आयुष दर्पण

स्वास्थ्य जगत का सजग प्रहरी (त्रैमासिक)

वर्ष 02 अंक 01 जनवरी-मार्च 2011

प्रधान संपादक

डॉ. बी.डी. जोशी

सम्पादक

डॉ. नवीन चन्द्र जोशी

सलाहकार संपादक मण्डल

डॉ. मयंक भटकोटी

डॉ. प्रदीप पाण्डेय

डॉ. रमेश चन्द्र सनवाल

डॉ. गणेश उपाध्याय

डॉ. विकास भटनागर

डॉ. अश्विनी कुमार बाना

डॉ. सतीश सिंह पिंगल

डॉ. पंकज पन्त

प्रेम पाण्डेय

डॉ. दिनेश जोशी

कानूनी सलाहकार

प्रमोद पन्त

तकनीकी सहसंपादक

मुग्धा जोशी

ले-आउट डिजाइन

सुनील सिंह चौहान, राजेन्द्र प्रसाद

कवर पृष्ठ छायाकार

शैलेष खर्कवाल

व्यावसायिक प्रतिनिधि

अवनिश कुमार त्यागी

संपादकीय कार्यालय

मुरली गंगा स्मृति भवन, तिलढुकरी,

पिथौरागढ़-262501(उत्तराखण्ड)

टेली/फैक्स नं. + 91 5964-223049

मो. +91- 9411137993

ई-मेल : ayushdarpan@gmail.com

Web site : www.ayushdarpan.com

www.ayushdarpan.org

विवरणिका

क्र.सं.	विवरण	पृष्ठ
1-	संपादकीय/प्रतिक्रियायें	2
2-	भोजन का प्राकृतिक महत्व.....	3
3-	अल्सर के रोगियों में	5
4-	कैंसर: कुछ महत्वपूर्ण जानकारियां..	8
5-	मधु: एक प्राकृतिक औषधि	13
6-	औषधीय द्रव्यों के प्रयोग.....	16
7-	भ्रम एवं सत्य	19
8-	भारतीय चिकित्सा पद्धति	20
9-	गर्भावस्था एवं योग	22
10-	रस शास्त्र: आयुर्वेद की	25
11-	होम्योपैथी चिकित्सा पद्धति	27
12-	शय्यामूत्र: होम्योपैथिक समाधान...	28
13-	अच्छी नींद	29
14-	आयुष दर्पण समाचार	30

विशेष प्रतिनिधि

डॉ. सोहन खंडूरी, देहरादून

डॉ. गुरूदयाल सिंह नेगी, उत्तरकाशी

डॉ. दीपक सरकार, ऊधम सिंह नगर

डॉ. बालम सिंह बोरा, हल्द्वानी

एस.बी. जोशी, पिथौरागढ़

नवीन पन्त, अल्मोड़ा-बागेश्वर

डॉ. हेमन्त तिवारी, नैनीताल

डॉ. प्रकाश जोशी, उज्जैन (म.प्र.)

डॉ. अनिल सिंह, मुज्जफरपुर (बिहार)

एम.पी. शर्मा, अम्बिकापुर (छत्तीसगढ़)

डॉ. हरिओम गुप्ता, बड़ोदरा (गुजरात)

एम.पी. साह, जयपुर (राजस्थान)

डॉ. अंजनी त्रिपाठी, सीतापुर (उत्तर प्रदेश)

डॉ. पीयूष जुनेजा (दिल्ली)

डॉ. सुशान्त शशिकांत पाटिल(महाराष्ट्र)

डॉ. डी.के. बसाक (त्रिपुरा)

डॉ. अनिल पोखरेल (नेपाल)

आयुष दर्पण स्वास्थ्य पत्रिका में प्रकाशित लेख चिकित्सकीय ज्ञान हेतु प्रसारित हैं। चिकित्सकीय परामर्श के बिना इनका प्रयोग न करें। किसी भी लेख/समाचार पर 60 दिनों के अन्दर जानकारी ली जा सकती है। विवाद की स्थिति में न्याय क्षेत्र पिथौरागढ़ होगा।

स्वामी, संपादक, मुद्रक एवं प्रकाशक नवीन चन्द्र जोशी द्वारा प्रीतिका प्रिन्टर्स, आर.जी.एम. प्लाजा, 23-चकराता रोड, देहरादून, (उत्तराखण्ड) से मुद्रित एवं मुरली गंगा स्मृति भवन, निकट गुंज्याल खेड़ा, तिलढुकरी, पिथौरागढ़ (उत्तराखण्ड)-262501 से प्रकाशित

आयु का विज्ञान जिसे आयुर्वेद के नाम से जाना जाता है, सबसे प्राचीन एवं प्रभावी विज्ञान है। इसकी शुरूआत तब हुई जब यह सृष्टि अस्तित्व में आयी, अर्थात यह विज्ञान आज के सभी विज्ञानों में प्राचीन है। जैसे ब्रह्माण्ड कि उत्पति शाश्वत सत्य है तथा प्राणियों की उत्पत्ति क्रमिक विकास का एक परिणाम है, जो आगे भी चलता रहेगा, ठीक उसी प्रकार एक निश्चित समय के बाद नष्ट होना भी एक नियति है,अर्थात् जो वर्तमान में है, वो पूर्व के विकास का परिणाम है, तथा एक निश्चित काल के व्यतीत होने के बाद उसे भी नष्ट होना है। प्रख्यात दार्शनिक डार्विन के अनुसार अस्तित्व के लिए होने वाले संघर्ष में जो फिट होगा वही आगे बढ़ेगा। यही बात भौतिकशास्त्री वैज्ञानिक स्टीव हॉकिन्स के नजरिये से भी सिद्ध होती है। मानव शरीर भी क्रमिक विकास का एक परिणाम है। आदिमानव से लेकर आज के आधुनिक मानव का वर्तमान अस्तित्व भी इन लम्बे समय के विकास प्रक्रिया की परिणति है। चूँकि वह विकास के झंझावातों में फिट रहा, अतः आज इस रूप में है। मानव शरीर को भी एक निश्चित समय में नष्ट होना है, अतः बीमारियाँ एक कारण मात्र हैं, वे पूर्व में भी थीं, आज भी हैं, और आगे भी रहेंगी। इसलिए रोगमुक्त सृष्टि, की कल्पना करना सृष्टि के नियमों के विपरीत है, हाँ जीवन को हितायु, सुखायु एवं दीर्घायु की प्राप्ति हेतु फिट रखना भी अपने आप में एक चुनौती है। इस चुनौती में हर वो साधन जो आपको स्वस्थ रखने में मददगार हो अपनाने चाहिए। विज्ञान किसी भी विषय का विशेष ज्ञान है, जो प्रत्यक्ष प्रमाण की कसौटी पर खरा हो, परन्तु अप्रत्यक्ष प्रमाण एवं अनुमान प्रमाण की कसौटी पर फिट को अवैज्ञानिक कहना भी गलत होगा। यह हो सकता है,जिसे हम आज प्रमाणिक न मान रहे हों,वह हमारे नजरिये की एक भूल हो,जो कालान्तर में प्रत्यक्ष प्रमाणों से सिद्ध हो। आज योग एवं आयुर्वेद को सम्पूर्ण विश्व में अपनाया जा रहा है। इसके पीछे कई वर्षों का स्वर्णिम इतिहास रहा है, हाँ यह बात सत्य है, कि सोने की चिड़िया से सपेरों के देश तक का सफर अब पुनः इसके पूर्व के इतिहास की पुनरावृत्ति मात्र है। ❁❁❁❁❁

*डॉ. नवीन चन्द्र जोशी,
संपादक
(प्रदेश सलाहकार न्यूजपेपर्स एण्ड मैग्जीन फेडरेशन ऑफ इण्डिया)

प्रतिक्रियायें

*आयुष दर्पण पत्रिका के एक वर्ष पूर्ण होने पर आपकी टीम को बधाईयाँ

राजीव कुमार
आयुर्वेदिक प्रेक्टीसनर,गेलॉर्ड़, यूएसए

*आयुष दर्पण पत्रिका निरन्तर प्रगति करे यही हमारी कामना है।

डा. देवेन्द्र जोशी,देहरादून

*आयुष दर्पण पत्रिका का अक्टूबर-दिसंबर अंक मिला,पत्रिका का हमें बेसब्री से इंतजार रहता है। डाक द्वारा कई बार समय पर न मिल पाने से हमें आपको बार-बार फोन करना पड़ता है। कृपया पत्रिका समय पर मिले यह सुनिश्चित करें।

बनवारी लाल गुप्ता,नवाबी रोड़,
हल्द्वानी।

*आयुष दर्पण पत्रिका हमें लगातार प्राप्त होती है,पत्रिका के सभी लेख रुचिपूर्ण एवं ज्ञान वर्धक होते हैं। आशा है इसका मराठी संस्करण शीघ्र ही प्रकाशित होगा।

शशिकांत पाटिल
जलगाँव, महाराष्ट्र

भोजन का प्राकृतिक महत्व

भोजन हमारे शरीर की प्रथम आवश्यकता है। कहते हैं,कि भूखे पेट भजन न होय! और यह भी कहते हैं,कि जैसा खाओगे अन्न वैसा रहेगा मन! पश्चिम के देशों में अमेरिकी एफडीए से मान्यता प्राप्त दवाओं के अलावा फूड सप्लीमेंट का बड़ा बाजार है, वहाँ दवाओं की अपेक्षा फूड़ सुरक्षित माना जाता है अतः जड़ी बूटियाँ या अन्य पौष्टिक पदार्थों को फूड सप्लीमेंट माना जाता है। ठीक इसी प्रकार प्राकृतिक चिकित्सा में भोजन को महत्वपूर्ण माना गया है।

वर्तमान समय विज्ञान की प्रगति का युग है,एवं जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में मानवता के हित में वैज्ञानिक प्रगति स्वयं मे चुनौती के रूप में सामने है। यह भी एक कटु सत्य है, कि वैज्ञानिक प्रगति मानवता को नष्ट करने की दिशा में भी हुई है । हमारे शरीर रूपी मशीन के पोषण हेतु ग्रहण किये जाने वाले भोजन में भी विज्ञान की प्रगति ने कुछ रासायनिक तत्व हमें वरदान के रूप में दिये हैं,जो शरीर में कैंसर जैसे रोगों की उत्पति के कारण बन रहे हैं। बेचने वाले चाहे कोई भी हों,उन्हें हमारे स्वास्थ्य की परवाह नहीं है। उनका काम हमारे स्वाद एवं आनन्द के अनुरूप अपना

उत्पाद बेचना है। पुराने जमाने में लकड़ी के चूल्हे में मिट्टी के बरतनों में बनाये गये भोजन की पौष्टिकता आज इतिहास के पन्नों में दर्ज हो गयी है। अच्छे स्वास्थ्य

के लिये अच्छा भोजन आवश्यक है। कहा भी गया है ''जैसा खाओगे अन्न वैसा होगा मन'' बीमारियों की उत्पति में भी भोजन की महत्वपूर्ण भूमिका है। भोजन के चिकित्सकीय महत्व पर प्रकाश डालते हुये ,प्राकृतिक चिकित्सक 'सर मैक कैरीसन' ने कहा है,कि यदि इच्छा शक्ति प्रबल हो,तो व्यक्ति किसी एक आहार पर भी जीवित रह सकता है। जैसे: पपीता, केला, सेब मलाई निकाला दूध आदि। एकल आहार को हमारे भोजन के पाचन से सम्बंधित अंगो की सफाई में भी प्रयुक्त किया जा सकता है। लेकिन अभी भी आधुनिक चिकित्सा पद्धति की पढ़ाई में यह विषय गौंण है। भोजन के द्वारा ही रोगों की उत्पति तथा भोजन के द्वारा ही रोगों की चिकित्सा भी की जा सकती है। अधिकांश लोगों की यह सोच है,कि जब दवाई खानी है,तो भोजन में परहेज का क्या मतलब । यहीं से परेशानीयों की शुरूआत होती है। नियमित रूप से, समय पर अच्छी तरह चबाकर तथा भूख लगने पर बिना किसी जल्दी एवं तनाव, के लिया गया भोजन शरीर के अच्छे स्वास्थ्य के लिये आवश्यक है। भोजन करते समय एक घन्टे बाद लिया गया जल पाचन प्रक्रिया को आसान बना देता है। यह भी सत्य है, कि सम्यक् आहार रोगों से बचाने में मददगार साबित हो सकता है।परन्तु यह भी सत्य है,कि सभी प्रकार के रोगों के लिए आहार ही सब कुछ नही हो सकता है। इसके अलावा व्यायाम,अच्छी नींद, गहरी साँस, दांतों एवं त्वचा की देखभाल का भी अपना महत्व है। आयुर्वेद में तो आहार, निद्रा एवं ब्रह्मचर्य को अच्छे स्वास्थ्य के लिये 'त्रिस्तम्भ' माना गया है। प्राकृतिक चिकित्सा में भोजन का अत्यधिक महत्वपूर्ण स्थान है। यह भी सत्य है, कि कई बार हम जिह्वालोलुपता के कारण मात्रा से अधिक भोजन ग्रहण कर लेते हैं। इसका शरीर पर नुकसानदायक प्रभाव पडता है।

अच्छे भोजन के चुनाव के साथ-साथ भोजन के संयोग का भी अपना महत्व है। जैसे: प्रोटीन एवं स्टार्च का संयोग, एसिड़ फूड का संयोग। भोजन में शर्करा, नमक एवं अचार का भी अपना अलग महत्व है। प्राकृतिक चिकित्सक भोजन में चीनी को मीठा जहर मानते हैं। चीनी एक ऐसा भोज्य पदार्थ है,जिसे हम आसानी से अपने भोजन से बाहर निकाल सकते हैं। यह भी एक प्रश्न है, कि हमें कितनी चीनी लेनी चाहिये? अधिकांश भोज्य पदार्थों में शर्करा किसी न किसी रूप में पायी जाती है। अत: इससे पूरी तरह बचना नामुमकिन है। प्रकृति ने हमारे भोज्य पदार्थों को शर्करा,नमक, विटामिन मिनरल आदि पदार्थों से युक्त कर हमारी शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ती करने योग्य बनाया है। हम इन पदार्थों को अधिक मात्रा में ग्रहण कर गलती कर बैठते हैं। अत: संतुलित मात्रा में प्राकृतिक रूप से ग्रहण किया भोजन अच्छे स्वास्थ्य के लिय आवश्यक है। आवश्यकता है, तनावमुक्त, संयमित होकर प्रकृति के अनुरूप भोजन करने की।

अल्सर के रोगियों में कैसा हो आहार

अल्सर यानि घाव, यह अगर पेट के अन्दर बन जाये तो स्थिति और भी गम्भीर हो जाती है। इसके रोगी उदर वेदना से कराहते हैं तथा कई बार रोगी भोजन मात्र को देखकर डर जाता है। अल्सर के बारे में विस्तृत जानकारियों से परिपूर्ण यह लेख रोगी तथा स्वस्थ दोनो के लिए हितकारी सिद्ध होगा।

भाग दौड़, तनाव एवं आगे बढ़ने के लिये प्रतिस्पर्धा आज सामान्य सी बात है अपने खान पान पर ध्यान न दे पाने के कारण व्यक्ति 'हाइपरएसिडिटी' जैसे लक्षणों के कारण कालान्तर में अल्सर जैसी स्थितियों को आमंत्रित कर रहा है। चिकित्सा जगत में 'पेप्टिक अल्सर' के नाम से प्रचलित बीमारी आंत्र नली के म्यूकोसल लाईनिंग में स्थानिक घाव जैसी स्थिति के कारण उत्पन्न हो जाती है। कुछ समय बाद स्थिति और भी गम्भीर होकर उत्तकों की मृत्यु (नेकरोसिस) तक हो जाती है। अधिकांश अल्सर डियोडेनम में देखे जाते हैं। इसके अलावा उदर के उपरी हिस्सों जैसे: इसोफेगस,पेट एवं छोटी आंत में भी ये मिल सकते हैं। हमारी गैस्ट्रिक एवं डियोडेनल म्यूकोसा में स्थित सुरक्षा रसायन बाहरी आघातों से इनकी रक्षा करते हैं।

अल्सर कैसे बनता है?

अल्सर के बनने की तीन प्रमुख प्रक्रियाएं हैं: इनमें श्लेष्मागत झिल्ली, प्रोस्टाग्लेन्डिन एवं यूरोगेस्ट्रोन की प्रमुख भूमिका होती है। ये हमारे पेट को हाइड्रोक्लोरिक एसिड के प्रभाव से बचाती हैं। श्लेष्मागत झिल्ली जिसे म्यूकोसल लेयर कहते हैं, एक जेलनुमा पदार्थ होता है। यह वाटर प्रुफिंग कर हानिकारक रसायनों के आघात से इन्हें बचाता है। म्यूकोसा एवं सबम्यूकोसा पर किसी भी उद्दीपन की स्थिति में प्रोस्टाग्लेन्डिन का स्रावण होने लगता है, जो तत्काल कोशिकाओं के रिप्लेस्मेंट की प्रक्रिया को बढ़ा देता है,जिससे माइक्रोसर्कुलेशन होने लगता है तथा सेल न्यूट्रीएन्ट्स आने लगते हैं, तथा हानिकारक पदार्थों को बाहर निकालने लगते हैं। यह प्रक्रिया गेस्ट्रिक म्यूकोसा को बगैर गेस्ट्रिक स्रवण को कम किये ही एब्सलयूट एल्कोहल एवं उबले

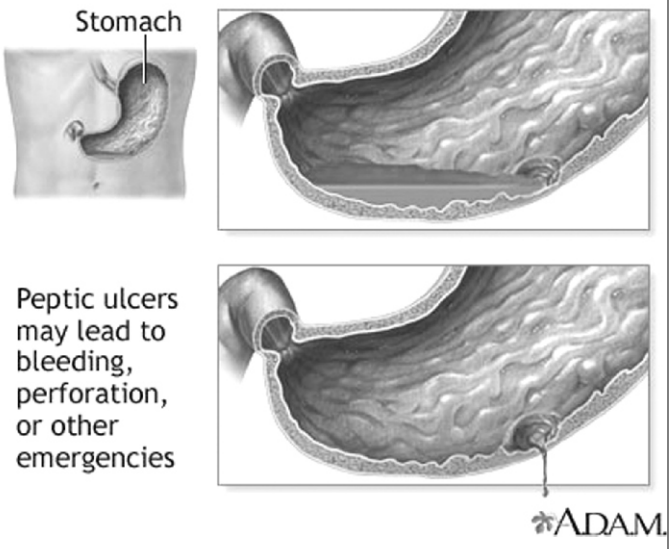

पानी के साथ-साथ अनेक रसायनिक पदार्थों के प्रभाव से बचाती है। यूरोगेस्ट्रोन जिसे सुरक्षा की तीसरी कड़ी माना जाता है, यह गेस्ट्रिक एसिड के स्रावण को कम करते हुये, कोशिकाओं के पुर्ननिर्माण को बढाता है,जिससे अल्सर भरने लगता है। सामान्यतया एसिड पेप्सिन के स्रवण एवं म्यूकोसल प्रतिरोध के मध्य संतुलन बना रहता है। यह संतुलन क्यों बिगड़ता है, यह आज भी मालूम नहीं है। जब कभी भी अत्यधिक एसिड का निर्माण होता है, या श्लेष्मा युक्त झिल्ली टूटती है, या कमजोर

होती है, तो पेट के अन्दर के हिस्से एसिड के सम्पर्क में आ जाते हैं, जिससे पेप्टिक अल्सर बन जाता है।

निम्नलिखित कारण म्यूकोसा को क्षय से बचाने में सहायक होते हैं:-

*** म्यूकोसल कोशिकाओं की एकरूपता**

*** इपीथिलीयम कोशिकाओं के पुर्ननिर्माण की क्षमता**

*** म्यूकोसल बैरियर**

*** रक्त संचरण**

कुछ दवायें जैसे एस्पिरिन,शराब एवं लम्बे समय तक खाली पेट रहने से भी अल्सर बनने की सम्भावना होती है।

यह एसिड के अधिक स्रावण के कारण उत्पन्न होता है,जबकि उत्तकों का प्रतिरोध सामान्य होता है। ऐसा अत्यधिक एसिड के कारण पेराइटल कोशिकाओं की संख्या में बढोतरी एवं अचानक पेट के खाली होने से 'बफरिंग प्रभाव' खत्म हो जाने के कारण उत्पन्न होता है।

गेस्ट्रिक अल्सर:-

गेस्ट्रिक अल्सर का कारण भी म्यूकोसल प्रतिरोध के कमजोर पड़ने के साथ-साथ कुपोषण, श्लेष्मागत झिल्ली में रक्त के कम संचरण एवं गैस्ट्रिक एसिड़ एवं पेप्सिन के संचरण को घटाने वाले प्रक्रिया के बाधित होने से उत्पन्न होता है। गेस्ट्रिक अल्सर के रोगियों में श्लेष्मागत झिल्ली में हाइड्रोजन आयन का पुन:गमन तथा बाइल का अधिक आना भी एक कारण माना जाता है। एस्पिरिन, इन्डोमिथेसिन जैसी दवायें जिनका प्रयोग रूयूमेट्वायड़ आर्थ्राइटिस की चिकित्सा में किया जाता है,गेस्ट्रिक म्यूकोसल बैरियर को प्रभावित कर देते हैं, जिससे गेस्ट्रिक अल्सर बनने की सम्भावना होती है। डियोडेनम से बाइलएसिड़ के अधिक आने से पाइलोरिक स्फिंक्टर सही रूप से काम नहीं कर पाता, जिससे क्रॉनिक गेस्ट्राइटिस एवं बाद में अल्सर उत्पन्न हो जाता है। गेस्ट्रिक अल्सर अधिकांश मेलिगनेन्ट कैंसर का कारण बनते हैं। यद्यपि गेस्ट्रिक अल्सर की उत्पत्ति में एसिड प्रमुख कारण होता है, तथापि उत्तकों की सेन्सटिविटी भी एक सहयोगी कारण है।

अल्सर के बनने में प्रमुख कारण क्या हैं?

अल्सर के बनने में निम्न भी अपनी भूमिका अदा करते हैं:-

1. जीवाणुजन्य संक्रमण: 'हेलिकोबेक्टर पाइलोरी' एक जीवाणु है, जो गेस्ट्राइटिस एवं डियोडेनाइटिस के लिये जिम्मेदार होता है। इसके लिये एन्टीबायोटिक्स द्वारा इलाज किया जाता है।

2. आनुवंशिक कारण: यह सामान्यतया '0' रक्त समूह के लोगों में देखा जाता है, अन्य समूहों में सम्भवत: 'एचएलएबी-5' एन्टीजन के उपस्थित होने के कारण कम देखा जाता है। अत: वैसे लोग जो इनके नजदीकी रिश्तेदार होते हैं उनमें अल्सर की सम्भावना अधिक होती है।

3. लिंग: पुरूषों में महिलाओं की अपेक्षा अल्सर बनने की सम्भावना दो से तीन गुना अधिक होती है।

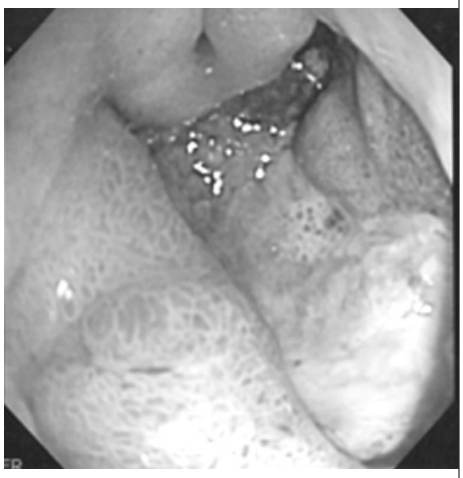

4. उम्र: बीस वर्ष से चालीस वर्ष की उम्र के लोगों में अल्सर बनने की सम्भावना अधिक होती है, इसका कारण सम्भवत: इस आयु में ही लोगों का अपने कैरियर एवं प्रतिस्पर्धा से गुजरना हो सकता है।

5. तनाव: वैसे लोग जो अत्यधिक नर्वस तथा चिन्ता करने वाले एवं भावनात्मक रूप से कमजोर होते हैं,उनमें इन भावनाओं से उत्पन्न तनाव के कारण एसिड़ अधिक बनता है तथा पेट में अधिक गति उत्पन्न हो जाती है । गेस्ट्रिक एवं डियोडेनम की दीवाल में उपस्थित रक्त नलिकाओं का नर्वस कंट्रोल प्रभावित होने से म्यूकोसा में खून का संचरण कम हो जाता है।

6. उद्दीपक पदार्थ: कॉफी, शराब, एस्पिरिन एवं तम्बाकू तथा सिगरेट में उपस्थित निकोटीन आदि पदार्थ अल्सर के बनने का कारण बनते हैं। इसके अलावा मिर्च, मसाला, अदरख, गरम मसाला, मीट मसाला, कड़ी पत्ती वाली चाय या कॉफी एवं अत्यधिक प्रोटीन युक्त द्रव्य, हाइड्रोक्लोरिक अम्ल की मात्रा को बढ़ा देते हैं,तथा स्थिति को और भी गम्भीर

बना देते हैं।

7. फाइबर युक्त आहार: भारत में पेप्टिक अल्सर के रोगियों के कम पाये जाने का कारण, यहाँ भोजन में रेशेदार पदार्थों का अधिक सेवन हो सकता है, जिसकी पुष्टि होनी अभी बाँकी है।

8. इमरजेन्सी की स्थिति: कई बार दुर्घटना जैसे: जलने,चोट लगने आदि से उत्पन्न तनाव के कारण भी अल्सर उत्पन्न हो सकता है।

अल्सर को कैसे पहचानें?

* उदर के उपरी हिस्से में दर्द। सीने में जलन खासकर भोजन लेने के एक से तीन घन्टे बाद दर्द एवं जलन अचानक बढ़ जाता है।

* दर्द के साथ-साथ भारीपन एवं भोजन लेने के बाद आराम महसूस होना। उदर के उपरी भाग में दर्द के साथ-साथ अफारा बनना।

* दर्द के साथ-साथ पेट की गति बढ़ जाना जिसे 'हाइपरमोटिलिटी' भी कहते हैं, या पेट का फूल जाना।

* वजन कम होना एवं आयरन की कमी के कारण होने वाला एनिमिया भी अल्सर के रोगियों में सामान्य रूप से देखा जाता है।

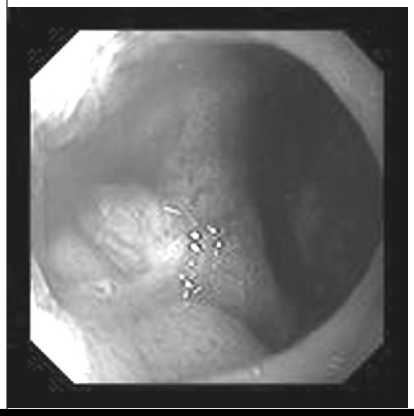

* कई बार अल्सर के फट जाने के कारण खून की उल्टी भी आ सकती है,जिसे 'हीमेटमेसिस' भी कहते हैं। अल्सर के रोगियों में कौन-कौन सी जाँचें आवश्यक हैं?

* बेरियम एक्सरे
* इन्डोस्कोपी
* बायोप्सी

अल्सर के रोगियों में कैसा हो आहार?

अल्सर के रोगियों में 'ब्लेंड डायट' दिया जाना चाहिए,जो रासायनिक ,भौतिक एवं थर्मल उद्दीपकों से रहित हो। भौतिक उद्दीपकों से युक्त भोजन में न पचने वाले कार्बोइड्रेट जैसे: धान, कच्ची सब्जियाँ आती हैं। रासायनिक उद्दीपकों से युक्त भोजन में कॉफी, शराब तथा मसालेदार भोजन सम्मिलित हैं। लाल मिर्च में मौजूद 'केपसिकीन' पेट की उपरी सतह की कोशिकाओं को नष्ट कर अल्सर की स्थिति को और भी गम्भीर बना देता है। अल्सर के रोगियों में शीघ्र लाभ हेतु ऐसा आहार दिया जाना चाहिए, जो सभी प्रकार के पोषक तत्वों से युक्त हो। दूध एवं प्रोटीन युक्त भोजन का अल्सर के रोगियों में 'बफरिंग प्रभाव' देखने में आता है। दूध सम्पूर्ण पोषक तत्वों से युक्त होता है,तथा अल्सर के घाव को भरने में मदद करता है। प्रोटीन युक्त आहार अमीनो एसिड की मौजूदगी के कारण उत्तकों के संश्लेषण में मददगार होकर अल्सर के घाव को भरता है। आहार में फैट् की मात्रा सामान्य होनी चाहिए, जिससे गैस्ट्रिक जूस कम हो जाता है तथा मोटिलीटी में भी कमी आ जाती है। अल्सर के रोगियों में खट्टे फल अल्सर को भरने में मदद करते हैं, ऐसे रोगियों में संतरे, नींबू एवं टमाटर के रस फायदेमन्द होते हैं। कुछ भोज्य पदार्थ जैसे पत्ता गोभी, प्याज, मूली एवं तला भुना भोजन अल्सर के रोगियों में पीड़ा को बढ़ा सकता है। नियमित फल एवं रेशेदार सब्जियों से युक्त आहार अल्सर के रोगियों में फायदेमन्द होता है। इसके अलावा किसी भी व्यक्ति में किसी खास भोज्य पदार्थ को लेने से यदि तकलीफ बढ़ जाती हो तो उसे न लेने की सलाह दी जानी चाहिए। अत: ऐसे रोगियों में सही इतिवृत लेकर उसके रहन सहन एवं आहार को ध्यान में रखकर ही 'डायट प्लान' करना चाहिए। रोगी नियमित या 'ब्लेन्ड डायट' किस पर रहेगा,इसे डायटीशियन पर छोड़ देना चाहिए। भोजन हमेशा तनाव मुक्त वातावरण में परिवार की सारी समस्याओं को एक तरफ छोड़कर शान्ति एवं प्रसन्नचित होकर लेना चाहिए। भोजन ग्रहण करने के पूर्व एवं बाद में थोड़ा आराम आवश्यक है। भोजन धीरे-धीरे अच्छी तरह से चबा कर लेना चाहिए। क्योंकि शीघ्रता से किया गया भोजन गैस्ट्रिक फीडींग रिफ्लेक्स को बढ़ा देता है। अल्सर के रोगियों को शराब एवं धूम्रपान के सेवन से बचना चाहिए,खासकर खाली पेट इनका सेवन कतई नहीं करना चाहिए। यदि व्यक्ति शारीरिक एवं मानसिक रूप से शान्त, तनाव मुक्त एवं प्रसन्न हो तो अल्सर के भरने में काफी मदद मिलती है।

कैंसरः कुछ महत्वपूर्ण जानकारीयाँ एवं बचाव

कैंसर एक ऐसी बीमारी जिसमें रोगी तिल-तिल कर मरता है तथा अब तक सटीक इलाज उपलब्ध न होने के कारण मानसिक त्रासदी से गुजरता है। अमेरिकी नेशनल कैंसर इंस्टीच्यूट के आकड़ों के अनुसार प्रोस्टेट, स्तन एवं फेंफड़ों के कैंसर के रोगियों में मृत्यु के आकड़ों में लगातार कमी आ रही है। उपर बताये गये कैंसर के रोगियों में बीमारी की पहचान के बाद से लगातार जीने की आयु बढ़ती जा रही है, और यह पाँच वर्ष तक दर्ज की गयी है। कैंसर के बारे में जानकारी से परिपूर्ण यह लेख गागर में सागर का कार्य करेगा।

कैंसर को 'जहरबाद' या कर्कट नामों से भी जाना जाता है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के आकडों के अनुसार हर वर्ष विश्व में लगभग 60लाख व्यक्ति कैंसर के शिकार हो रहे हैं,जिनमें से लगभग 45 लाख व्यक्ति प्रतिवर्ष इस बीमारी से जान गंवाते हैं। सामान्यतया शरीर की कोशिकाएं एवं ऊतक एक निश्चित अनुशासित तरीके से बढ़ती हैं, परन्तु जब शरीर के किसी भाग की कोशिकाएं और ऊतक अनियंत्रित रूप से बढ़ने लगें तथा शरीर के अंग विशेष में गाँठ या माँस के लोथड़े (टयूमर्स) परिलक्षित हों,जो अन्य स्वस्थ कोशिकाओं को भी नष्ट करने लगें तो यह कैंसर कहलाता है। विश्व में हृदय रोगों के बाद कैंसर मृत्यु का दूसरा सबसे बड़ा कारण है। एक सर्वेक्षण के आधार पर यह पाया गया है,कि हमारे देश में मुँह और गले के कैंसर सबसे अधिक होते हैं। देश के नागरिकों में कैंसर की जानकारी से सम्बधित ज्ञान न होने के कारण लोग कैंसर के शुरूआती लक्षणों को नहीं समझ पाते हैं। वर्तमान में इसका प्रमुख कारण प्रदूषण,खान-पान तथा रहन -सहन में हो रहा परिवर्तन है। यह घातक रोग किसी भी लिंग,आयु,जाति या

वर्ग के मनुष्य के शरीर के किसी भी अंग में हो सकता है। यदि प्रारम्भिक अवस्था में ही इस बीमारी का पता चल जाय,तो इसका उपचार सम्भव है।

मनुष्य का शरीर विभिन्न प्रकार के उत्तकों से बना होता है, जैसे: एपिथीलियम उत्तक, मिजोथीलियम उत्तक एवं इण्डोथीलियम उत्तक,कैंसर शरीर के किसी भी अंग में उत्पन्न हो सकता है,उदाहरणार्थ: एपीथिलियम उत्तक में होने वाला कैंसर 'कारसीनोमा' तथा मिजोकाईमल उत्तकों में पनपने वाले कैंसर को 'सारकोमा' नाम से जाना जाता है।

कैंसर छूत की बिमारी नहीं है, मरीज के सम्पर्क में आने से,उसके कपड़े या वस्तुओं को छूने से यह रोग अन्य व्यक्तियों को नहीं फैलता है। पर्वतीय क्षेत्रों में शराब ओर तम्बाकू का सेवन काफी अधिक होता है, जिस कारण मुँह,ग्रासनली,फेफड़ों तथा आमाशय के कैंसर इन क्षेत्रों में अधिक संख्या में दृष्टिगोचर होते हैं।

कैंसर के कुछ प्रमुख लक्षण:-

* आवाज का भारीपन यदि अधिक समय तक रहे ,तथा सामान्य उपचार से ठीक न हो।

* त्वचा में कोई तिल या मस्सा सामान्य से बड़े आकार का हो जाय, रंग बदलने लगे तथा उसमें से रक्त निकलने लगे।

* खाँसी,बिना बलगम के साथ निरंतर बनी रहे, और सामान्य उपचार से ठीक न हो ।

* मुँह के भीतर,जीभ पर या जबड़ों पर कोई घाव या छाला हो जो महीने भर से ठीक न हो रहा हो।

* वक्ष में यदि कोई गाँठ मालूम पड़े जो आकार में छोटी या बड़ी हो तथा दर्द करती हो या नहीं ।

* भोजन निगलने में कठिनाई हो,हाजमा लगातार बिगड़ा रहे, पेट में असामान्य दर्द हो या मूत्र विसर्जन में असामान्य कठिनाई हो।

* बड़ी उम्र में लगातार खूनी बबासीर बनी रहे।

* माहवारी बन्द होने के समय अधिक व अनियमित रक्त स्राव हो ।

* शरीर के वजन का अप्रत्याशित रूप से अचानक कम हो जाना।

खाद्य पदार्थ जिनका सेवन कैंसर का कारण बन सकता है:-

* अत्यधिक तले भूने या वसायुक्त भोजन का प्रयोग ।

* संरक्षित (प्रीर्जव्ड) आहार का अधिक सेवन ।

* अचार व नमक का अधिक प्रयोग।

* भोज्य पदार्थों में फँफूंदी, फँफूंदीनाशक व कीटनाशकों का समायोजन।

* गुप्तांगों की उचित सफाई न करना

* एक से अधिक पुरूष या महिलाओं से सम्बन्ध।

शरीर में होने वाले कुछ मुख्य कैंसर:-

मुँह का कैंसर,गले या स्वर यंत्र का कैंसर,फेफड़े का कैंसर, स्तन कैंसर, गर्भाशय का कैंसर, रक्त कैंसर (ल्यूकेमियाँ), त्वचा का कैंसर,लिंग का कैंसर, आमाशय का कैंसर, आंतों का कैंसर,पित्त की थैली का कैंसर,गुर्दे का कैंसर, मूत्राशय का कैंसर आदि

* कम रेशेयुक्त आहारों का निरन्तर सेवन।

* खाद्य पदार्थों का आर्सेनिक एवं एसबेस्टस जैसी धातुओं द्वारा प्रदूषित होना।

कैंसर के लिए उत्तरदायी मानव जीवन के कुछ महत्वपूर्ण पहलू:-

* कम उम्र में विवाह।

* कम उम्र में संतान उत्पन्न करना।

*अधिक संतानोत्पत्ति तथा बच्चों की आयु में कम अंतर रखना।

* कम उम्र में मैथुन तथा अप्राकृतिक मैथुन।

* 35 वर्ष के उम्र के बाद प्रथम गर्भावस्था।

कैंसर सम्बन्धित महत्वपूर्ण जानकारियाँ:-

* प्रत्येक व्यक्ति के शरीर में कैंसर पैदा करने वाली कोशिकाएं मौजूद होती हैं। ये कोशिकाएं जब तक कुछ अरब की संख्या में वृद्धि न कर लें, तब तक ये कैंसर के सामान्य मानक परीक्षण को नहीं दर्शाती हैं। यदि चिकित्सक किसी मरीज से कहे, कि

अब उसके शरीर में कैंसर कोशिकाएं नहीं हैं, इसका तात्पर्य यह है, कि ये कोशिकायें परीक्षण में दिखाई देने की सीमा से कम हैं। यदि शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता मजबूत है, तो कैंसर कोशिकाएं स्वयं नष्ट हो जाती हैं तथा वृद्धि कर शरीर में गाँठ (ट्यूमर) नहीं बना पाती हैं। यदि किसी व्यक्ति को कैंसर है,इसका अभिप्राय यह है, कि व्यक्ति के भोजन में पोषक तत्वों की कमी हो रही है। कैंसर का होना वशांनुगत, वातावरण,खान-पान तथा जीवन शैली पर भी निर्भर करता है। भोजन की पौष्टिकता में कमी से बचने के लिए विभिन्न आहारों को बदल-बदल कर सेवन करना चाहिए तथा व्यक्ति दिन में 3-4 बार भोजन करना चाहिए,साथ ही खाद्य पूरकों का समय-समय पर उपयोग कर अपनी प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाना चाहिए। कैंसर के उपचार में प्रयुक्त किये जाने वाले रसायन (कीमोथैरेपी) तीव्रता से बढ़ रही कैंसर कोशिकाओं को नष्ट करते हैं, साथ ही यह तेजी से वृद्धि प्राप्त कर रही स्वस्थ कोशिकाओं, उत्तकों एवं शरीर के विभिन्न आन्तरिक अगों जैसे: अस्थि मज्जा, पाचन तंत्र जैसे: यकृत, वृक्क, हृदय व फेफडों को भी काफी नुकसान पहुँचाती हैं।

कैंसर के उपचार में प्रयुक्त विकिरण चिकित्सा (रेडियोथैरेपी) कैंसर कोशिकाओं के अतिरिक्त स्वस्थ कोशिकाओं, उत्तकों एवं विभिन्न आन्तरिक अंगों के लिए भी घातक होती हैं। कीमोथैरेपी व रेडियोथैरेपी द्वारा उपचार प्रारम्भिक अवस्था में बहुधा कैंसर की गॉठ के आकार को तो कम करते हैं,परन्तु निंरतर प्रयोग करने पर ये ट्यूमर पर कोई विशेष प्रभाव नहीं डालते। शरीर में अत्यधिक कीमोथैरेपी या रेडियोथैरेपी के कारण मरीज की रोगप्रतिरोधक क्षमता पर भी काफी बुरा प्रभाव पड़ता है, जिससे पीड़ित व्यक्ति अन्य दूसरे संक्रमण या आन्तरिक परेशानियों से ग्रसित हो जाता है। कीमोथैरेपी व रेडियोथैरेपी द्वारा कैंसर कोशिकाओं में उत्परिवर्तन हो जाता है, तथा ये कोशिकाएं इन उपचारों के प्रति प्रतिरोधकता उत्पन्न कर लेती हैं,जिससे उन्हें नष्ट करना कठिन हो जाता है। शल्य चिकित्सा द्वारा भी कैंसर कोशिकाएं शरीर के एक भाग से दूसरे भागों में फैल सकती हैं। कैंसर से लड़ने का एक प्रभावी तरीका यह है,कि कैंसर कोशिकाओं को बढ़ने के लिए जो पोषक तत्व आवश्यक हैं, उन्हें प्राप्त होने से रोककर कोशिकाओं को यदि भूखा रख दिया जाय तो कैंसर की कोशिकाओं की मृत्यु होने लगती है। शर्करा पूरकों जैसे: न्यूट्रास्वीट, इक्वल, स्पूनफुल जो 'एस्पाटामी' द्वारा बनते हैं, का शर्करा की जगह प्रयोग करने से कैंसर कोशिकाएं पूर्ण पोषण नहीं ले पाती हैं। प्राकृतिक शर्करापूरक, मुनक्का या शीरा को भी कैंसर रोगियों द्वारा प्रयोग में लाया जा सकता है। सामान्य नमक की जगह 'ब्रेग ऐमिना' या समुद्री नमक का प्रयोग करना लाभदायक हो सकता है। दूध आतों में श्लेष्मा (म्यूकस) बनाता है, कैंसर कोशिकाएं श्लेष्मा में अच्छी वृद्धि करती हैं,

इसलिए दूध की मात्रा को कम करके उसकी जगह सोया दूध का प्रयोग करने से कैंसर कोशकाएं पोषण नहीं ले पाती हैं। कैंसर कोशिकाएं अम्लीय वातावरण में अच्छी वृद्धि करती हैं। बकरी का माँस शरीर में अम्लीयता बढ़ाता है,अत: बकरी के माँस के स्थान पर मछली का प्रयोग करना चाहिए। माँस में एंन्टीबायोटिक, वृद्धि हार्मोन्स तथा कई परजीवी होते है,ये कैंसर के मरीज के लिए काफी हानिकारक हैं। आहार में 80 प्रतिशत ताजी सब्जियाँ व उनके रस, अंकुरित खाद्यान्न, बीज,मेवे आदि शरीर में क्षारीय वातावरण बनाते हैं, तथा 20 प्रतिशत पकाया हुआ भोजन शरीर के लिए उपयुक्त रहता है। ताजी सब्जियों के रस में उपस्थित सक्रिय एन्जाइम तुरन्त शरीर में अवशोषित होकर 15 मिनट के भीतर कोशिकाओं के स्तर पर पहुँच जाते हैं तथा वे स्वस्थ कोशिकाओं को पोषण प्रदान कर उनकी वृद्धि में सहायक होते हैं। कॉफी, चाय व चाकलेट के अधिक सेवन से हमें बचना चाहिए। जबकि हरी चाय (ग्रीन-टी) में कैंसर-रोधी गुण होते हैं। 50से 100 ग्राम ताजे अंगूर का सेवन कैंसर के रोगियों में फायदेमन्द होता है। कैंसर का मरीज पेट साफ रक्खे,अर्थात कब्ज न होने

दें एवं अपने शरीर के उत्सर्जी अगों जैसे:त्वचा, फेफडों, यकृत एवं वृक्क को सक्रिय रखें । विटामिन- 'ए', 'सी' का अधिक सेवन भी शरीर को कैंसर से लड़ने में सहायता प्रदान करता है। 50से 100 ग्राम गेहूँ का ज्वार पीस कर उसके पेय का नियमित सेवन करने से कैंसर (ल्यूकेमियाँ)तथा अन्य कैंसर में काफी लाभ मिलता है। पीने के लिए अच्छी तरह छने पानी का सेवन करना चाहिए, जिससे पानी में उपस्थित हानिकारक भारी तत्वों एवं अन्य रसायनों से बचा जा सके, 'आसूत जल' अम्लीय होता है। अत: इसके प्रयोग से यथासम्भव बचना चाहिए। माँस में उपस्थित प्रोटीन का पाचन भी काफी कठिन होता है, इसके पाचन के लिए काफी मात्रा में पाचक एन्जाइम्स का उपयोग होता है, बिना पूरी तरह पचा माँस हमारी आँतों में पड़ा सड़ता रहता है, तथा शरीर में विषैले तत्वों का निर्माण करता है। कैंसर कोशिकाओं में प्रोटीन से बनी कोशिका भित्ति काफी मजबूत होती है, माँस का सेवन न करने से शरीर में मौजूद पाचक एन्जाइम्स कैंसर कोशिकाओं के प्रोटीन आवरण पर आक्रमण करते हैं तथा शरीर में मौजूद 'कीलर कोशिकाओं' की मदद से कोशिकाओं को नष्ट करने लगते हैं। कुछ पूरक खाद्य पदार्थों में मौजूद ऑक्सीकरण-रोधी तत्व (एन्टीऑक्सीडेन्ट), विटामिन्स, लवण आदि शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाते हैं, जिनसे रोग प्रतिरोधक 'कीलर कोशिकाएं' मजबूत होकर कैंसर कोशिकाओं को नष्ट कर देती हैं। विटामिन-ई शरीर में मौजूद अवाँछित, चोट-ग्रस्त एवं अनावश्यक कोशिकाओं को शरीर से बाहर निकाल देता है। कैंसर रोग में शरीर, मस्तिष्क एवं भावनाएं काफी महत्वपूर्ण होती हैं। अत: सकारात्मक सोच एवं भावनाएं कैंसर से लड़ने में सहायक होती हैं। गुस्सा, कड़वाहट आदि प्रक्रियाएं शरीर में तनाव पैदा कर अम्लीय वातावरण बनाती हैं। अत: तनाव मुक्त रहकर राहत व आनन्द से परिपूर्ण जीवन जीना अधिक उपयुक्त होता है। कैंसर कोशिकाएं ऑक्सीजन आधिक्य वातावरण में जीवित नहीं रह पाती हैं। अत: प्रतिदिन व्यायाम,गहरी साँस लेना व नियमित योग करना चाहिए, इससे शरीर के कोशिकीय स्तर तक ऑक्सीजन का संचार होता है, यह ऑक्सीजन उपचार भी कैंसर कोशिकाओं को नष्ट करता है। प्लास्टिक की बोतल में पानी भरकर फ्रीजर में नहीं रखना चाहिए। फ्रीजर में रखने से प्लास्टिक से 'डायोक्सिन' नामक रसायन अवमुक्त होकर पानी में आ जाता है। यह 'डायोक्सिन' रसायन अत्यधिक विषैला तथा कैंसरकारक होता है, जो मुख्य रूप से स्तन कैंसर को जन्म देता है। माइक्रोवेव ओवन में प्लास्टिक के बर्तनों में खाना गर्म नहीं करना चाहिए,क्योंकि खाद्य पदार्थों में उपस्थित वसा एवं ओवन की गर्मी से प्लास्टिक से 'डायोक्सिन' अवमुक्त होकर खाद्य पदार्थों में आ जाता है, तथा भोजन के साथ शरीर में पहुँचकर कैंसर को जन्म देता है। अत:माइक्रोवेव में प्लास्टिक के स्थान पर काँच जैसे कार्निक या पायरेक्स व चीनी मिटटी के बर्तनों का उपयोग करना चाहिए।

खाद्य पदार्थों को प्लास्टिक की पन्नी में लपेट कर गर्म करने के लिए माइक्रोवेव में रखना अत्यधिक घातक होता है, क्योंकि ओवन के तापमान से प्लास्टिक गल कर खाने में समाहित होकर शरीर में प्रविष्ट कर जाता है । जो शनैः शनैः कैंसर का कारण बनता है।

कैंसर की रोकथाम में सहायक खाद्य पदार्थः

* कम चिकनाईयुक्त आहार,शुद्ध रिफाइण्ड तेलों का प्रयोग।
* रेशेयुक्त खाद्य पदार्थ।
* ताजे फल -आम,अंगूर, संतरा, अनार, पपीता, आँवला, अमरूद आदि।
* ताजी हरी सब्जियाँ-पालक, मेथी, बन्दगोभी, ब्रोकली आदि।
* पीली सब्जियाँः गाजर, कद्दू आदि।
* अंकुरित दालें व चना आदि

कैंसर की सम्भावना को कम करने वाले कारक :-

* तम्बाकू या अन्य तम्बाकू उत्पादों का पूर्ण परित्याग।
* दूध, दही व अन्य दूध उत्पाद।
* अंकुरित दालें एवं चना आदि।
* शरीर को मोटापे से बचाना चाहिए। वसा मुख्यतयाः पशु वसा के सेवन को कम करना चाहिए।
* हरी, पीली व रेशेदार सब्जियों तथा फलों का अधिक से अधिक उपयोग करना चाहिए।
* मदिरा का सेवन कम से कम करना चाहिए।
*नियमित व्यायाम तथा प्राणायाम करना चाहिए, साथ ही तनावमुक्त जीवनशैली अपनाना चाहिए।
*सूर्य की सीधी किरणों से यथा सम्भव बचना चाहिए।
* 45 वर्ष उपरान्त अपना वार्षिक चिकित्सा परीक्षण अवश्य करवाना चाहिए। उपयुक्त वर्णित कैंसर के लक्षणों में से शरीर में कोई लक्षण लम्बे समय तक परिलक्षित हों तो चिकित्सक से परामर्श लेनी चाहिए, साथ ही ध्यान में रखना चाहिए, कि कैंसर के ये लक्षण किसी अन्य बीमारी की वजह से भी हो सकते हैं। अतः चिन्तित न होकर तुरन्त चिकित्सक की सलाह लेना चाहिए। उपरोक्त तथ्यों को इस लेख में देने का उद्देश्य यह है, कि लोग कैंसर से सम्बधित इन छोटी-छोटी जानकारियों से अवगत हों तथा लेख में वर्णित बातों को अपने दैनिक व्यवहार में अपनाकर कैंसर सदृश भयावह बीमारी से अपना एवं अपने परिवार का बचाव कर एक खुशहाल जीवन व्यतीत करें । ❁❁❁❁❁

*** डा. हेमन्त कुमार पाण्डेय**
वैज्ञानिक 'डी'
रक्षा जैव ऊर्जा अनुसंधान संस्थान
(डी.आर.डी.ओ.)
प्रक्षेत्र-पिथौरागढ़-२६२५०१ (उत्तराखण्ड)

अपने आस पास के औषधीय पौधे को पहचानें।

इस पौधे को पहचाने एवं नीचे दिये गये फार्म को भरकर भेंजे।
पौधे का नाम : .....(हिन्दी में)
वानस्पतिक नाम : .....
क्षेत्रीय नाम : .....
कुल : .....
औषधीय प्रयोग .....
सबसे पहले सही उत्तर भेजने वाले व्यक्ति को पुरस्कृत किया जायेगा तथा उनका नाम फोटो सहित आगामी अंक में प्रकाशित किया जायेगा।

पिछले अंक में प्रकाशित औषधीय पौधे की पहचान करने वाले पाठक

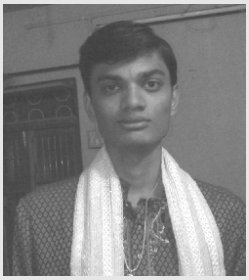

नामः
डॉ तुषार शशिकांत पाटिल
योग्यताः
बी.डी.एस.
पताः
तालुका-यावल,फैजपुर, जलगाँव (महाराष्ट्र)

पौधे का नामः एरण्ड (हिंदी में)
वानस्पतिक नामः Ricinus communis Linn
क्षेत्रीय नामः एरंडी, एरंडो, अरंड
कुलः Euphorbiaceae
औषधीय प्रयोगः वृष्य, भेदनीय, अगमर्द प्रशमन, वातसंशमन, विरेचक, कटिशूल, गृध्रसी, पार्श्वशूल, हृदयशूल, आमवात एवं संधिशोथ

मधु (शहद): एक प्राकृतिक औषधि

आयुर्वेदीय चिकित्सा में शहद का विशेष महत्व है, शहद को अनुपान, सहपान के साथ प्रयोग करने का निर्देश है। शहद को योगवाही की संज्ञा दी गई है। वरिष्ठ चिकित्सक द्वारा शहद के विस्तृत गुणों की सारगर्भित जानकारी लोगों की जागरूकता को बढ़ाने का कार्य करेगी।

मधु (शहद) एक प्राकृतिक एन्टीआक्सीडेन्ट औषधि है ।

मधु विभिन्न भाषाओं में विभिन्न नामों से जाना जाता है। जैसे -संस्कृत में मधु, मकरन्दरस, माक्षिक आदि हिन्दी में शहद, कुमाऊंनी में मौ, अंग्रेजी में हनी, लेटिन में मैल। शहद मधुमक्खियों द्वारा निर्मित होता है,मधुमक्खियाँ भिन्न-भिन्न जाति के फूलों से उनका मकरन्द रस (नेक्टर) चूस कर उन्हें अपने आमाशय के समीप स्थित 'हनी सैक' (मधुवाली थैली) में संग्रहित करती हैं। मधुमक्खियाँ एक एन्जाइम पैदा करती हैं, जिससे यह शहद के रूप में परिणत हो जाता है। फिर वे अपने छत्ते में जाकर छत्ते की छोटी-छोटी कोठरियों में उसको भर देती हैं। छत्ते में मधुमक्खियाँ उसे मोम में सुरक्षित रखकर छोड़ती हैं। यह शहद चिप-चिपा,कुछ पारदर्शक, हल्के भूरे रंग का वजनदार,सुगंधित, अत्यंत मीठा,गाढ़ा,पानी में अच्छी तरह घुलने वाला एक प्राकृतिक द्रव पदार्थ होता है।

<u>शहद का रासायनिक संगठन:</u> सूरजमुखी फल के मकरन्दरस से बने शहद के आधार पर रासायनिक संगठन (प्रति 100 ग्राम शहद में) जल-17%, फ्रूक्टोज-39%, ग्लूकोज-34%, सूक्रोज-1%, डेक्सट्रोज-0.5% (इसकी उपस्थिति से स्टार्च, माल्टोज में बदला जाता है) प्रोटीन-2%, मोम-1%, अम्ल (गैलिक एसिड, वैनजोइक एसिड, फॉरमिक एसिड, सिन्नामिक एसिड, साइट्रिक एसिड़ 0.05%) लवण-1% (कैलशियम, आयरन, फास्फेट, मैग्नीशियम, आयोडिन, फ्लेवेनवॉयड, एग्लाईसेन्स) आदि, रेसिन्स-4% *उपरोक्त संगठन में मात्रा भिन्न-भिन्न फूलों के मकरन्दरस के स्रोत के आधार पर घट बढ़ जाती है।

<u>शुद्ध मधु की पहचान</u>: आयुर्वेदिक औषधशास्त्रानुसार शुद्ध शहद के लक्षण निम्न प्रकार बताये गये हैं।

(1) शुद्ध शहद पानी में अच्छी तरह घुल जाता है।

(2) शुद्ध मधु को कुत्ते नहीं खाते हैं।

(3) मधु में रूई की बत्ती भिगोकर उसे जलाने से बत्ती जल उठेगी।

(4) मक्खी को पकड़कर यदि उस पर किलो के हिसाब से भी शुद्ध शहद डाला

जाय, तो उसमें न मक्खी मरेगी और न दबेगी, बल्कि थोडी़ देर में तैरती उपर आ जायेगी और उड़ जायेगी।

(5) मधु की गन्ध, स्वाद और रूप से भी शुद्धता की पहचान की जाती है। उपरोक्त पहचान भौतिक सत्यापन हेतु पर्याप्त है। परन्तु रासायनिक सत्यापन हेतु, प्रयोगशाला परीक्षण कराना आवश्यक होगा।

<u>वर्जनीय मधु</u>- (आयुर्वेदानुसार)- यह ध्यान देना चाहिये कि मधु अमृत तुल्य होने पर भी विशेष परिस्थितियों अथवा

संयोग विरूद्ध पदार्थों के मेल से विष तुल्य हो जाता है। इसलिए मधु का उपयोग करते समय नीचे लिखी बातों पर ध्यान देना चाहिए।

(1) मधु की प्रकृति उष्ण पदार्थों के विपरीत है, इसलिये इसे कभी भी आग पर गरम नहीं करना चाहिए। आग पर औंटाया हुआ मधु विष के समान हो जाता है। इसके अतिरिक्त ग्रीष्मकाल में गरम जल के साथ अथवा गरम दूध के साथ इसका कभी भी सेवन नहीं करना चाहिए

(2) सन्निपात ज्वर रोगियों के लिए मधु सेवन निषेध है।

(3) घी और मधु को तौल में समान भाग मिलाकर उपयोग में नहीं लाना चाहिए।

(4) मकोय को मधु के साथ मिलाकर नहीं खाना चाहिए।

(5) लगातार अधिक मात्रा में बहुत लम्बे समय तक मधु का सेवन नहीं करना चाहिए।

मधु पर देश और काल का प्रभावः

भिन्न-भिन्न काल में भिन्न-भिन्न देशों में भिन्न-भिन्न प्रकार के फूलों के मकरन्द रस (नेक्टर) से मधुमक्खियाँ शहद बनाती हैं। इसलिए देश काल और फूलों के अनुसार उसके गुणों में भिन्नता होना स्वाभाविक है। अतः मधु का सेवन करते समय इस बात का ध्यान अवश्य रखना चाहिए। हिमालय क्षेत्र को मधु के लिए उत्तम माना गया है,क्योंकि यहाँ हजारों प्रकार के फूलों की उपलब्धता रहती है,तथा वृक्ष अपने सौरभ से वायुमण्डल को शुद्ध किये हुए रहते हैं। यहाँ का मधु साफ,गाढ़ा,स्वादिष्ट, शीतल,विषरहित और निर्दोष माना गया है।काल के हिसाब से शीतकाल के प्रारम्भ में संग्रह किया हुआ मधु सबसे उत्तम होता है,क्योंकि इस काल में सभी वनस्पतियाँ पककर रस से परिपूर्ण हो जाती हैं। इन्हीं गुणकारी एवं पुष्ट वनस्पतियों के पुष्प-पराग और रसों को संग्रहित करके मधुमक्खियाँ मधु का निर्माण करती हैं। ग्रीष्म एवं वर्षाकाल में संग्रह किया हुआ मधु अच्छा नहीं होता है।

मानव शरीर पर मधु के औषधीय प्रभावः आधुनिक अनुसंधानों से पता चला है, कि शहद में बहुत सारे 'फीनोलिक तथा नानफीनोलिक' एन्टीऑक्सीडेन्ट्स पाये जाते हैं। किस शहद में कितनी मात्रा में यह उपलब्ध होंगे, यह फूलों के मकरन्दरस (नेक्टर) के स्रोतों पर निर्भर करता है। इसके अलावा विभिन्न प्रकार के विटामिन्स भी मधु में पाये जाते हैं। विटामिन-'बी' की मात्रा मधु में अधिक पायी जाती है। इस विटामिन के प्रभाव से रक्त शुद्ध होता है। रक्त की विकृति एवं विटामिन -'बी' की कमी से होने वाले रोग 'बेरी-बेरी' में शहद का प्रयोग सफलतापूर्वक किया जा सकता है।

पाचन तंत्र पर शहद का औषधीय प्रभावः प्रकृति विरूद्ध और भारी भोजन बहुत अधिक समय तक करने की वजह से आमाशय और पक्वाशय में अधिक समय तक गड़बड़ी आ जाने पर शहद को स्वतंत्र रूप से या किसी दूसरी अनुकूल औषधियों के साथ सेवन करने पर आमाशय की रस ग्रंथियाँ क्रियाशील होकर अधिक पाचक रस निकालना प्रारम्भ कर देती हैं, जिससे सूजन दूर होती है, जठराग्नि की क्रियाशीलता तीव्र हो जाती है, और भूख अधिक लगने लगती है। शहद पेट के अन्दर जाकर आंतों की बिगड़ी हुई क्रिया को सुव्यवस्थित करके उनके अन्दर जमे हुए विजातीय द्रव्यों को दूर कर देता है। यकृत की क्रियाशीलता शिथिल होने के कारण यदि रोगी पोषक आहार जैसे-दूध, दही, घृत या शक्कर आदि पदार्थों को पचाने में भी असमर्थ हो जाय, तो ऐसी हालत में मधु का सेवन करने से यकृत में सुधार आकर पाचन क्रिया दुरूस्त हो जाती है।

चर्म रोगों पर मधु का प्रभावः शहद में विटामिन-'बी' की प्रधानता होने की वजह से यह त्वचा में रक्त की क्रियाशीलता को सुधारती है। चर्म रोगों में मधु को 24 घंटे में एक बार लगाना चाहिए। जब शरीर में रासायनिक क्रिया की विकृति से फोड़े आदि निकलते हों तो ऐसे फोड़ों में पहले सूई से छोटा सा छिद्र करके फिर मधु का उसके उपर लेप करने से आश्चर्यजनक लाभ होता है। शहद की यह विशेषता है, कि इसके बार-बार लगाने से घाव में मवाद पैदा नहीं होने पाता और न घाव का निशान रहने पाता है।

गुर्दों की बीमारी में मधु का प्रयोगः मधु में सोडियम व एल्ब्यूमिन नहीं होने से गुर्दे की व्याधि से ग्रस्त रोगों में यह उत्तम पथ्य है।

मस्तिष्क पर मधु का प्रभावः मस्तक के उपर मधु को कुछ दिनों तक लगातार लगाने से मस्तिस्क और ज्ञान तंतुओं की दुर्बलता मिट जाती है।

नेत्रों में मधु का औषधीय प्रभाव: नेत्रों में पैदा होने वाले विविध प्रकार के रोग, मधु के नियमित अंजन करने से दूर हो जाते हैं। मगर अंजन के रूप में हिमालय क्षेत्र में पैदा होने वाला 'पदम मधु' का प्रयोग ही उत्तम रहता है।

जननेन्द्रिय पर मधु का प्रभाव: पुरूष और स्त्री के जनेनन्द्रिय पर मधु के बाह्य प्रयोग से बहुत से लाभ होते हैं। काम-विज्ञानी 'मेरी स्टोप्स' का कथन है, कि यदि सहवास के समय स्त्री अपनी योनि के भीतरी भाग को मधु से पूर्ण करे, तो इससे स्त्री और पुरूष दोनों को लाभ होता है। क्योंकि सहवास के समय रक्त की गति और हृदय की धड़कन में तीव्रता आ जाती है,और सारे शरीर के तंतु सक्रिय और तेजस हो जाते हैं। ऐसी अवस्था में धमनियों के केन्द्र स्थान जननेन्द्रिय को मधुपूरित करने से मधु के समस्त विशिष्ट पदार्थ जननेन्द्रिय की पेशियों द्वारा अवशोषित होकर शरीर की सम्पूर्ण रक्त कोशिकाओं में व्याप्त होकर पूरे शरीर को पोषण प्रदान करते हैं, तथा सहवास में खपत होने वाली ऊर्जा की क्षतिपूर्ति भी जल्दी ही हो जाती है। जननेन्द्रिय के दूषित होने तथा उसके मल को साफ करने में भी मधु से अच्छी मदद मिलती है। लिंगेन्द्रिय की शिथिलता को मिटाने में भी मधु अच्छा कार्य करती है।

हृदय पर मधु का औषधीय प्रभाव: आधुनिक अनुसंधानों से ज्ञात हुआ है,कि मधु 'फीनोलिक कम्पाउण्ड' का अच्छा स्रोत होने की वजह से हृदय के लिए बेजोड़ औषधि है। यह हृदय को रक्त संचरित करने वाली धमनियों में कॉलेस्ट्रोल को जमने से रोकता है।

मधुमेह रोग एवं मधु: मधुमेह रोग में यकृत व आमाशय की क्रियायें बिगड़ने लगती है, जिससे पाचन क्रिया ठीक ढंग से नहीं हो पाती है। और रोगी पोषक पदार्थों को नहीं पचा पाता है, तथा ये बिना पचे ही मल-मूत्र के मार्ग से शरीर के बाहर निकल जाते हैं। यह स्वाभाविक नियम है कि जितने प्रकार के भी मीठे पदार्थ खाये जाते हैं, वे उदर में जाकर शरीर की रासायनिक क्रिया द्वारा द्राक्ष-शर्करा के रूप में बदल जाते हैं, तथा भोजन को पचाने में सहायक होते हैं। मधुमेह रोग में यकृत की शर्करा को बनाने की शक्ति नष्ट हो जाती है। ऐसे में शुद्ध मधु का आहार रूप में उपयोग करने से यकृत को शर्करा बनाने में बहुत मदद मिलती है। मधुमेह बिमारी में 'टाइप-1मधुमेह' इन्सुलिन हार्मोन की कमी से पैदा होता है। शरीर में इन्सूलिन अग्नाशय के लैंगरहेन्स भाग में स्थित बीटा कोशिकाओं द्वारा पैदा होता है। इन कोशिकाओं में कमी या खराबी आ जाने से इन्सूलिन हार्मोन पैदा होना कम या बन्द हो जाता है, जिससे डायबिटीज (मधुमेह) रोग उत्पत्र हो जाता है। मधु में अनेक एन्टीआक्सीडेन्ट कम्पाउन्ड तथा एन्जाइम्स होने के कारण यह कोशिका की मृत्यु को रोकता है। मधु पैंक्रियाज के बीटा कोशिकाओं का पुर्ननिर्माण करता है, जिससे बीमारी धीरे-धीरे नियंत्रित होने लगती है। आवश्यकता है, औषधि को बनाने वाली मधुमखियों की उचित देखभाल संरक्षण एवं जीवित रखने की! यह जिम्मेदारी भी हम सभी की है। आधुनिक अनुसंधानों से यह ज्ञात हुआ है, कि जहाँ-जहाँ मोबाइल के टावर लगे हैं, उनके नजदीकी क्षेत्र में अत्यधिक इलैक्ट्रो-मैगनेटिक रेडियेशन्स की वजह से मधुमक्खीयाँ अपना रास्ता भटककर मरती जा रही हैं। इस ओर हमें विशेष घ्यान देना होगा, यदि ऐसा न किया गया तो भविष्य में मधुमक्खियों के न होने से हमें यह अमृत तुल्य औषधि 'मधु' प्राप्त न हो सकेगी। इस अमृत तुल्य मधु में उसके संरक्षण के लिये किसी भी प्रकार का एन्टीबायोटिक व कीटनाशक नहीं मिलाना चाहिए, यह उसके प्राकृतिक औषधीय गुणों को नष्ट कर विषैला बना सकता है। ❁❁❁❁❁

*** डॉ.डी.एन. तिवारी**
सेवानिवृत वरिष्ठ चिकित्साधिकारी
चम्पावत (उत्तराखण्ड़)

औषधीय द्रव्यों के प्रयोग का आयुर्वेदिक सिद्धान्त

द्रव्य गुण विषय के अनुभवी विशेषज्ञ के नजरिये से यह लेख आयुर्वेदिक औषधियों के प्रयोग, कार्मुकत्व एवं प्रभाव के सिद्धान्तों को छात्रों एवं शोधकर्मियों के ज्ञान को सही दिशा में बढ़ायेगा।

आयुर्वेदशास्त्र भारतीय प्राचीन चिकित्सा विद्या है, तथा औषधियों के प्रयोग में इसके अपने मूल सिद्धान्त प्रभावी होते हैं। आज लोगों में एकल औषधीय द्रव्य एवं पॉली हर्बल फार्मूलेशन की वैज्ञानिक विश्लेषण पर चर्चाएं होती हैं। भारतीय चिकित्सा विद्या आयुर्वेद एकल एवं पॉली हर्बलऔषधीय कल्प के सिद्धान्तों पर आधारित है। यह सत्य है,कि औषधीय द्रव्यों का कार्मुक तत्व,द्रव्यों के वैज्ञानिक प्रभाव की पुष्टि करता है,तथा काष्ठ औषधियों का विकल्प हो सकता है,क्योंकि उनमें सक्रिय रसायनों की गणनात्मक मात्रा विद्यमान होती है। मानकीकरण आज के युग की आवश्यकता है, जिससे आज चिकित्सा जगत में औषधीय द्रव्यों के प्रयोग को व्यापक रूप से उपयोग में लाया जा रहा है,लेकिन आयुर्वेद के सिद्धांत के अनुसार औषधि का प्रयोग पूर्ण द्रव्य के रूप में होना चाहिए,न कि सक्रिय या कार्मुक तत्व के रूप में। यदि हम इतिहास को देखें तो पॉलीहर्बल फार्मूलेशन को आयुर्वेदिक संहिताओं में भी उदघृत किया गया है, तथा आज कई औषधि निर्माता कम्पनी इसका प्रयोग करती आ रही हैं। उन्हें पॉली हर्बल फार्मुलेशन के पीछे के सत्य को समझाना कठिन है, क्योंकि प्रत्येक फार्मुलेशन में पच्चीस या अधिक रासायनिक तत्व हो सकते हैं,तथा इन तत्वों का मानकीकरण प्रत्येक फार्मुलेशन के लिए किया जाना भी अत्यंत जटिल कार्य है। स्थिति तब और भी गम्भीर हो जाती है, जब आयुर्वेद शास्त्र के अनुसार

एक फार्मुलेशन का बहुप्रयोग सामने आता है, अतः औषधीय द्रव्यों के बढ़ते प्रयोग को देखते हुए यह आवश्यक है, कि हमारे पास एनालिटिकल डाटा, बायोइक्वीबेलेंस, फार्माकोलॉजिकल एवं टॉक्सीकोलॉजिकल अध्ययनों से प्राप्त प्राप्त आँकडे मौजूद हों। साथ ही हर्बल एवं सिन्थेटिक ड्रग के आपस में परस्पर प्रभावों का भी अध्ययन हो। यह बात सत्य है, कि हर औषधि में अपना कार्मुक तत्व होता है, तथा कुछ हद तक इसके दुष्प्रभाव भी हो सकते हैं। इन्हीं सब बातों को ध्यान में रखकर आयुर्वेद, औषधि को पूर्ण द्रव्य के रूप में प्रयुक्त किये जाने का समर्थन करता है। इससे उसके आवश्यक प्रभाव के साथ साथ दुष्प्रभाव समाप्त हो जाते हैं। आयुर्वेदीय औषधियाँ रस पंचक के सिद्धान्त पर कार्य करती हैं। इसके अनुसार औषधि रस-विपाक-गुण-वीर्य एवं प्रभाव के आधार पर कार्य करती हैं। यदि 'वीर्य' के सिद्धान्त को देखा जाय,तो स्पष्ट हो जाता है,कि आचार्यों को औषधि द्रव्यों के कार्य करने की प्रक्रिया की पूर्ण जानकारी थी तथा उन्होंने द्रव्यों के वीर्य संवर्धन की रसायनिक विधियों पर कार्य किया,परन्तु उन्होंने औषधि द्रव्यों के दुष्प्रभावों एवं सहप्रभावों के उत्पन्न होने के भय से औषधि द्रव्यों के सक्रिय कार्मुक तत्व को निकालकर प्रयोग करने की दिशा में नहीं सोचा। आयुर्वेद हमेशा दुष्प्रभाव रहित चिकित्सा तथा एक व्याधि को ठीक करने के चक्कर में दूसरी व्याधि को उत्पन्न न होने देने के सिद्धान्तों पर

आधारित है। यह ''IATROGENIC EFFECT'' अर्थात औषधि द्रव्य द्वारा होने वाले रोगों की संभावनाओं से मुक्त रहने के सिद्धान्तों पर आधारित है। आचार्य वागभट्ट के अनुसार उत्तम चिकित्सा वह है,जो अन्य रोगों को उत्पन्न न करते हुए दुष्प्रभाव रहित हो। औषधियों के प्रयोग में पूर्ण द्रव्य का प्रयोग अग्नि को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए। 'अग्नि' के कारण ही हम स्वस्थ या रोगी होते हैं। अत: औषधि द्रव्यों के चयन एवं प्रयोग के दौरान हर स्तर पर अग्नि का ध्यान रखा जाना चाहिए। अधिकांश आयुर्वेदिक औषधियाँ दीपन एवं पाचन गुणों से पूर्ण होती हैं। यदि उनमें से सक्रिय कार्मुक तत्व को अलग कर एकल रूप से प्रयोग कराया गया,तो वह अग्नि की चिकित्सा तथा रोगी की सम्पूर्ण चिकित्सा के सिद्धान्त का पालन नहीं कर पायेगी। इसके अलावा एक अन्य महत्वपूर्ण कारण यह भी है,कि किसी भी औषधि द्रव्य में केवल सक्रिय कार्मुक रासायनिक तत्व का अंश ही नहीं होता है,बल्कि अल्प अंशों में अन्य रसायनिक तत्व भी विद्यमान होते हैं, जो रोगी को स्वास्थ्य लाभ देने में मददगार होते हैं। केवल सक्रिय कार्मुक रसायनिक तत्व को अलग कर शेष बचे रसायनों से युक्त औषधीय द्रव्यों को फेंक देने से औषधि के अन्य महत्वपूर्ण तत्वों का लाभ नहीं मिल पाएगा। अत: औषधि द्रव्य को सम्पूर्ण द्रव्य के रूप में ही प्रयुक्त कराया जाना चाहिए। विस्तृत रूप में हम यह समझ सकते हैं,कि किसी भी औषधि द्रव्य के कार्य करने के सिद्धान्त को जानने के लिये उसके शारीरिक प्रभाव,शरीर के द्रव्य पर प्रभाव तथा चिकित्सकीय रसायनिक प्रभावों को जानना आवश्यक है। आयुर्वेदिक चिकित्सा दुष्प्रभाव रहित चिकित्सा के सिद्धान्तों पर आधारित है। अत: औषधीय द्रव्य के शारीरिक प्रभाव एवं रसायनिक प्रभाव को अधिक महत्व न देते हुए औषधीय चिकित्सकीय प्रभाव को अधिक महत्व दिया गया है। इसे हम निम्न रूप से समझ सकते हैं। शखपुष्पी रक्तचाप को कम करने में प्रयुक्त होने वाली औषधि है, लेकिन यह स्वस्थ व्यक्ति में प्रयोग करने पर निम्नरक्तचाप पैदा नहीं करती है। उसी प्रकार आयुर्वेदीय चिकित्सा में प्रयुक्त होने वाले 'एन्टासिड' हाइपरक्लोरोहाइड्रिया की दशा मे हाइड्रोक्लारिक अम्ल को तो कम करते ही हैं, परन्तु लम्बे समय तक प्रयोग करने पर हाइपोक्लोरोहाइड्रिया उत्पन्न नहीं करते हैं। इसी प्रकार पुर्ननवा, गोक्षरू एवं पाषाणभेद जैसी औषधियाँ शोथ एवं जलोदर के रोगियों में मूत्रल प्रभाव दर्शाती हैं, परन्तु स्वस्थ व्यक्ति में वैसा प्रभाव उत्पन्न नहीं करती हैं। इसी प्रकार कुटज एवं जातिफल अतिसार को रोकने में प्रयुक्त होती हैं, परन्तु स्वस्थ व्यक्ति में प्रयोग कराने से कब्ज जैसी स्थिति उत्पन्न नहीं होती है। ये ऐसे उदाहरण हैं, जिनसे आयुर्वेदिक औषधियों के चिकित्सकीय रासायनिक प्रभाव को समझा जा सकता है। लेकिन यदि इन औषधीय द्रव्यों में से इनके सक्रिय कार्मुक तत्व को निकालकर प्रयोग कराया जाय तो वे सक्रिय रसायनिक तत्व तुरन्त अपना शारीरिक प्रभाव तो दर्शाते हैं, लेकिन सहप्रभाव एवं दुष्प्रभाव को भी उत्पन्न करते हैं। आयुर्वेदीय औषधियाँ द्रव्य दुष्प्रभाव रहित शारीरिक प्रभाव के सिद्धान्त पर कार्य करती हैं। इसी प्रकार कुछ औषधि द्रव्य अपने शारीरिक प्रभावों के कारण 'विष' की श्रेणी में आते हैं। जैसे जायफल का

स्वस्थ तथा रोगी दोनों में ही मल नि:सारक प्रभाव होता है, अत: इसे विष की श्रेणी में रखा गया है। एक रूचिकर पहलू यह भी है अधिकांश औषधि द्रव्यों में उपस्थित एक रसायन दूसरे रसायन के प्रभाव को संतुलित कर देते हैं,जैसे सप्तरंगी में मौजूद एक रसायन आंशिक रूप से हाईपोग्लाइसिमिक प्रभाव दर्शाता है,जबकि दूसरा रसायन आंशिक हाइपरग्लाइसिमिक प्रभाव उत्पन्न करता है। यदि सप्तरंगी को मधुमेह के रोगियों में पूर्ण औषधीय द्रव्य के रूप में प्रयोग

कराया जाय तब इसका कुल हाईपोग्लाइसिमिक प्रभाव मिलता है। इससे हम यह समझ सकते हैं,कि औषधीय द्रव्यों में रसायनों के अंश इस प्रकार मौजूद होते हैं,ताकि मिलने वाला कुल प्रभाव दुष्प्रभाव न होकर लाभकारी हो। इसी प्रकार भल्लातक को कैंसर के रोगियों में पूर्ण औषधि द्रव्य के रूप में दिये जाने पर उपद्रव रहित प्रभाव मिलते हैं। उपरोक्त उदाहरणों से औषधि के सम्पूर्णद्रव्य के रूप में प्रयोग किये जाने के सिद्धान्त को बल मिलता है। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में चिकित्सकों के मध्य सिन्थेटिक दवाईयों जैसे एन्टीबायोटिक्स से जीवाणुओं में उत्पन्न हो रहा प्रतिरोध चिकित्सा में एक बड़ा रोड़ा साबित हो रहा है। इन दवाइयों के अत्यंत बुरे दुष्प्रभाव भी होते हैं। यदि प्रभाव के प्रति भी जीवाणुओं ने प्रतिरोध उत्पन्न कर लिया तो रोगी को अनावश्यक रूप से दुष्प्रभाव का सामना करना पड़ता है। इन दवाईयों से शरीर की प्राकृतिक रोग प्रतिरोधक क्षमता का भी ह्रास होता है। आयुर्वेदिक औषधियों के प्रति शरीर में किसी भी प्रकार का प्रतिरोध उत्पन्न नहीं होता है। यही कारण है,कि आयुर्वेदिक औषधियों का लम्बे समय तक किया गया प्रयोग भी प्रभावी एवं सुरक्षित होता है। यह भी एक सच्चाई है,कि आज की परिस्थितियों में आयुर्वेदिक औषधियाँ तात्कालिक प्रभाव नहीं दे पाती हैं। इन्हीं कारणों से औषधीय द्रव्य के सम्पूर्ण प्रयोग की वैज्ञानिक महत्ता कम हो जाती है, तथा आधुनिक विज्ञान कार्मुक रसायनिक तत्व को निकालकर प्रयोग कराने एवं तात्कालिक प्रभाव देने के सिद्धान्त का समर्थन करता है। भले ही उसके दुष्प्रभाव उत्पन्न हो रहे हों। अत: बीच का रास्ता यह हो सकता है, कि आयुर्वेदिक औषधियो के फार्मुलेशन में बगैर छेड़-छाड़ किये कार्मुकता को कई गुना बढ़ाने की दिशा में वैज्ञानिक शोध किये जायें तथा ऐसे शोधों को बढ़ावा दिया जाय। सारगर्भित रूप में यह कहा जा सकता है,कि आधुनिक औषधियों के प्रयोग से चिकित्सकों को प्रभाव के साथ-साथ दुष्प्रभाव को भी समायोजित करना पड़ता है। इन्हीं कारणों से यह कहा गया है,कि''When a Drug is given a risk is taken'' आयुर्वेदीय औषधियाँ सहप्रभाव एवं दुष्प्रभाव मुक्त होती हैं।कुछ औषधियाँ 'विष' की श्रेणी में आती हैं, परन्तु उनके प्रायोगिक इस्तेमाल से पूर्व पूर्ण रूप से शोधन किया जाना आवश्यक है। यही बातें आयुर्वेदिक रस-औषधियों पर भी लागू होती हैं। कुछ औषधियों के फार्मुलेशन में विष के दुष्प्रभाव को रोकने के लिए एन्टीडोट मिलाने का भी प्रावधान है। जैसे बुखार की आयुर्वेदिक चिकित्सा में प्रयुक्त औषधि में वत्सनाभ मुख्य घटक होता है, परन्तु टंकण इसके दुष्प्रभाव को समाप्त कर देता है। इसी प्रकार भल्लातक को हमेशा घृत के साथ प्रयोग कराया जाता है। आयुर्वेदिक चिकित्सा में सिन्थेटिक या एन्टीबायोटिक दवाईयों जैसा कोई सिद्धान्त नहीं है, अत: टॉलरेन्स,प्रतिरोध या एडिक्शन जैसी स्थितियों के उत्पन्न होने का सवाल ही नहीं होता है। आसव या पाक के रूप में चिरयौवन की रक्षा के लिए प्रयुक्त औषधियों के लम्बे समय तक प्रयोग से भी रोगी के अन्दर स्वस्थ होने का अहसास बना रहता है। तथा रोगी में इन औषधियों को लेने की आदत नहीं पड़ती है, जब चाहे रोगी में औषधि बन्द की जा सकती है। किसी भी बीमारी के लक्षण,शरीर के उत्तकों एवं जीवाणु/विषाणु के मध्य हो रही लड़ाई के सिग्नल मात्र होते हैं। शरीर खुद उस जीवाणु/विषाणु या विकृत रसायनों को निकालने या समाप्त करने का प्रयास करता है। जरूरत है, तो केवल थोडी सी मदद की,ताकि वह जीवाणु/विषाणु या विकृत रसायनों पर काबू पा सके।

निष्कर्ष:-इस लेख के पीछे का उद्देश्य आयुर्वेदिक औषधियों की कार्मुकता को बढ़ाने की दिशा में कार्य करने को बढ़ावा देने, तथा इस दिशा में कार्य किये जाने को प्राथमिकता देते हुये सम्पूर्ण चिकित्सा का सिद्धान्त जिसके अन्तर्गत ''Treat the man as a whole and give the drug as a whole'' का पालन करने की दिशा में शोध कार्य किये जायें,अर्थात् इससे आयुर्वेद के सिद्धान्त ''शमनम न तु कोपनम'' का अक्षरश: पालन हो।

*** डा. चक्रपाणी शर्मा**
प्रोफेसर, द्रव्यगुण विभाग
राजस्थान आयुर्वेद विश्वविद्यालय,
जोधपुर (राजस्थान)

भ्रम एवं सत्य

हम अपने दैनिक जीवन में कई बार जानकारी के अभाव के कारण भ्रान्ति पाल बैठते हैं, जबकि सत्य कुछ और होता है। ऐसी ही कुछ भ्रान्तियाँ एवं उनके पीछे के सच को इस लेख के माध्यम से उजागर किया जा रहा है।

भ्रान्तिः- होम्योपैथिक दवायें कुछ नहीं बल्कि चीनी की गोलियाँ है!

सत्य :- हाँ कुछ होम्योपैथिक दवाओं में मापने के स्तर का रसायन नहीं होता है परन्तु इन्हें चीनी की गोलियाँ नहीं कहा जाना चाहिए, ये लेक्टयुलोज शर्करा होती हैं जो रसायनों को शरीर में ले जाने का माध्यम मात्र हैं।

भ्रान्तिः- होम्योपैथी से घातक बीमारियाँ ठीक नहीं की जा सकती है!

सत्यः- होम्योपैथी घातक बीमारियों में भी अच्छा कार्य करती है, यदि कुशल चिकित्सक के पास मरीज समय रहते पहुँच जाये। होम्योपैथी के मलेरिया जैसी बीमारियों में भी अच्छे प्रभाव देखें गये हैं।

भ्रान्तिः- होम्योपैथिक,हर्बल एवं आयुर्वेदिक दवाईयाँ एक जैसी ही तो होती हैं!

सत्यः-होम्योपैथिक एवं आयुर्वेदिक दवाईयों के कार्य करने का अपना अलग सिद्धान्त है,जबकि हर्बल शब्द जड़ीबूटीयों के लिये प्रयोग में लाया जाता है। होम्योपैथिक दवायें अल्कोहल या जल में डायलुट कर अलग-अलग पोटेन्सी की बनायी जाती हैं। आयुर्वेदिक दवाईयाँ जड़ीबूटियों, खनिज तत्वों एवं प्राकृतिक रसायनों से बनाई जाती हैं तथा रस-गुण-वीर्य-विपाक-प्रभाव के सिद्धान्त पर कार्य करती हैं।

भ्रान्तिः-होम्योपैथिक एवं आयुर्वेदिक दवायें धीरे-धीरे कार्य करती हैं!

सत्यः-होम्योपैथिक दवायें वायरल फ्लू, जुखाम आदि में तुरन्त प्रभावी होती हैं,लेकिन पुराने जीर्ण रोगों में धीरे-धीरे प्रभावी होती हैं। आयुर्वेदिक दवायें भी शीघ्रता से कार्य करती हैं, यह रोग की स्थिति पर निर्भर करता है। आयुर्वेदिक रस औषधियाँ शीघ्र प्रभावी होती हैं, ऐसा ही कुछ आसव-अरिष्टों के साथ भी देखने में आता है।

भ्रान्तिः-होम्योपैथिक एवं आयुर्वेदिक दवायें केवल इन्सानों के लिये होती हैं, इनमें जानवरों की बीमारियों के लिये उपचार नहीं होता है!

सत्यः-होम्योपैथिक दवाओं में आज कल जानवरों के लिये बहुत सी दवायें उपलब्ध हैं तथा एलर्जी,एन्जाइटी एवं दर्द मिटाने में कारगर है। आयुर्वेद सम्पूर्ण जीवन का विज्ञान है, अतः सभी जीवों के लिये चिकित्सा उपलब्ध है।

भ्रान्तिः-होम्योपैथिक, आयुर्वेदिक एवं यूनानी दवाओं को लेने में चिकित्सक के पास जाना उतना जरूरी नहीं है, पत्रिकाओं, किताबों से नुस्खे पढ़कर भी अपना इलाज स्वयं किया जा सकता है!

सत्यः-होम्यापैथिक दवायें हर व्यक्ति विशेष के लिये लक्षणों के आधार पर अलग-अलग होती हैं। आयुर्वेदिक एवं यूनानी दवायें भी प्रकृति, दोष आदि के निर्धारण के आधार पर अलग-अलग मात्रा में आयुवर्ग के हिसाब से निश्चित की जाती है, अतः स्वयं के द्वारा इलाज किये जाने से भयंकर दुष्प्रभाव सामने आ सकता हैं।

भ्रान्तिः- आयुर्वेदिक चिकित्सा हर्बल एवं शाकाहारी चिकित्सा है तथा इसमें साईड इफैक्ट नहीं होता है!

सत्यः-आयुर्वेदिक चिकित्सा में हर्बल के अलावा दूध, शहद, एल्कोहल, तेल, नमक, भस्में आदि का प्रयोग होता है,कुछ आयुर्वेदिक दवाओं में माँसरस आदि का प्रयोग भी होता है अतः इसे हर्बल एवं शाकाहारी चिकित्सा कहना एक भ्रान्ति के सिवा कुछ नहीं है। यदि भोजन भी समय, काल एवं मात्रा का ध्यान न रखते हुये ग्रहण किया जाये तो विषतुल्य हो सकता है, फिर औषधि क्यों नहीं? अतः चिकित्सा यदि मात्रा काल, उम्र एवं चिकित्सक के परामर्श के बगैर ली गई तो उसके साईड इफैक्ट तो तय ही हैं, दुष्प्रभाव भी सम्भव हैं।

भ्रान्तिः- पंचकर्म नामक चिकित्सा के अन्तर्गत 'स्पा' एवं होटलों में किया जाने वाला 'मसाज एवं बाथ' होता है, जिसे

कोई भी कभी ले सकता है!

सत्यः- पंचकर्म नाम से जाने वाली विधा आयुर्वेदिक चिकित्सा की एक विधि है जिसमें वमन, विरेचन, बस्ति, नस्य, रक्तमोक्षण आदि सम्मिलित हैं। ये होटलों में किया जाने वाला 'मसाज या बाथ' कतई नहीं है तथा इसे कोई भी स्वस्थ या रोगी बगैर विशेषज्ञ के निर्देशन के नहीं ले सकता। पंचकर्म चिकित्सा की जटिल विधियों को बहुत छोटे एवं बहुत बूढ़े व्यक्ति को नहीं दिया जा सकता है।

भ्रान्तिः- आयुर्वेदिक चिकित्सा में क्लीनिकल ट्रायल नहीं किये जाते!

सत्यः-आयुर्वेदिक चिकित्सा वर्षों पूर्व से ऋषि, मुनियों एवं आचार्यों के निरन्तर शोध एवं क्लीनिकल ट्रायल के फलस्वरूप विकसित हुई है तथा इसमें और भी अधिक क्लीनिकल ट्रायल की आवश्यकता है।

भ्रान्तिः- शाकाहारी एवं माँसाहारी में कौन अधिक स्वस्थ होगा ?

सत्यः-यदि हम आकड़ों पर गौर करें तो अधिकांश धमनी अवरोध का कारण सैचुरेटेड़(74%) जिनमें पॉलीअनसैचुरेटेड़ (41%) होता है, जो वेजीटेबल ऑयल से प्राप्त होता है। 'इन्टरनेशनल एथेरोस्केलोरेसिस प्रोजेक्ट' की रिपोर्ट के अनुसार शाकाहारी एवं माँसाहारी लोगों में 'एथेरोस्केलोरेसिस' के रोगियों की संख्या में खास अन्तर नहीं देखा गया है। हाँ अमेरिकन जर्नल में प्रकाशित मृत्यु दर के आँकड़ों में शाकाहारियों में 0.93% तथा माँसाहारियों में 0.89% मृत्युदर का प्रतिशत पाया गया। (क्रमश.....)

❁❁❁❁❁

भारतीय चिकित्सा पद्धतिः समय की आवश्यकता

भारतीय चिकित्सा पद्धति आज के समय की आवश्यकता बन पड़ी है। निरापद एवं प्रकृति के करीब होने से इस चिकित्सा पद्धति की ओर सम्पूर्ण विश्व का ध्यान जा रहा है। लेखक एक अनुभवी चिकित्सक हैं तथा चिकित्सकों के एक संगठन के पदाधिकारी हैं उनके नजरिये से यह लेख जन सामान्य एवं चिकित्सकों को एक नई दिशा देने का कार्य करेगा।

वेदों को सबसे प्राचीन ग्रन्थों के रूप में जाना जाता है। आयुर्वेद, अर्थववेद का उपवेद है तथा सम्पूर्ण जीवन के विज्ञान के रूप में जाना जाता रहा है। प्राणी जिस देश, काल, परिवेश का हो उसके अनुरूप ही उसकी चिकित्सा होनी चाहिये। वेद का यह सूत्र चिकित्सकों के लिये स्मरणीय होना चाहिये। अग्रेजों के भारत आगमन से पूर्व हमारे देश में आयुर्वेद एवं यूनानी चिकित्सा पद्धतियों का बोलबाला था। वैद्य एवं हकीम रोगियों का उपचार किया करते थे। दक्षिण में सिद्ध चिकित्सा तथा सम्पूर्ण भारत में होम्योपैथी एवं योग द्वारा रोगियों की चिकित्सा का वर्णन मिलता है। ये पद्धतियाँ अपने शिखर पर थीं, तथा असाध्य रोगों की चिकित्सा में भी सफलता प्राप्त कर रहीं थी। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में पश्चिम में एलोपैथी चिकित्सा के क्षेत्र में नये अनुसंधान प्रारम्भ हुये और कालांतर में कई जटिल एवं असाध्य रोगों की चिकित्सा सफल हो पायी। इनमे ट्यूबरकुलोसिस, लैप्रोसी, डायबिटीज, कार्डियकडिजीज आदि का इलाज सम्भव हो पाया तथा टीकाकरण, ब्लड़ ट्रांसफ्यूजन, इन्ट्राविनसफ्ल्यूड एडमिन्सट्रेशन आदि तकनीकों से चिकित्सा जगत में नयी क्रान्ति आयी। शल्य चिकित्सा द्वारा जटिल सर्जरी को अच्छे संज्ञाहर द्रव्यों की मदद से आसानी से सम्पन्न कराया जा सका। ब्रिटिश काल में इसे आधुनिक चिकित्सा के रूप में अस्पतालों एवं डिस्पेन्सरियों में बढ़ावा दिया गया, भारत की प्राचीन चिकित्सा पद्धति आयुर्वेद, यूनानी, सिद्ध एवं योग को जादूमंत्र या प्लेसिबो इलाज के नाम पर उपेक्षित किया गया। आज स्वतंत्रता के छः दशकों के उपरान्त भी यह चिकित्सा पद्धति उपेक्षित ही रही है। स्वतंत्रता

प्राप्ति के बाद मिश्रित चिकित्सा पद्धति को बढ़ावा देने का कार्य राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी, स्वामी श्रद्धानन्द, महामना पंड़ित मदनमोहन मालवीय तथा हकीम अजमल खान साहब आदि ने किया। उन्होंने इस विचार को आगे बढ़ाया कि स्वतंत्र भारत की चिकित्सा पद्धति आयुर्वेद के साथ-साथ, आधुनिक चिकित्सा विज्ञान को भी एकात्म कर सके। अत: इसके सैद्धान्तिक, प्रायोगिक एवं व्यवहारिक पहलूओं पर विस्तृत गहन अध्ययन कराया गया, ताकि एक राष्ट्रीय चिकित्सा प्रणाली विकसित हो। प्रशिक्षित चिकित्सक, वैद्य, हकीम आदि ग्रामीण जनता के साथ-साथ नगरीय प्रबुद्ध वर्ग को भी चिकित्सा सेवा का लाभ दे सकें। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात आयुर्वेद/ यूनानी/ आधुनिक चिकित्सा के विद्वानों जैसे: डॉ.के.एम. उडुप्पा, डॉ.पी.जी. देशपाण्डे, डॉ. भास्कर गोविन्द घाणेकर, निजाम हैदराबाद और अनेक राष्ट्रचिन्तकों द्वारा सरकारी एवं निजी क्षेत्रों में विभिन्न राज्यों की फैकल्टी/बोर्डों से सम्बद्धता/मान्यता प्राप्त कर विश्वविद्यालयों में पाठ्यक्रम स्वीकृत कराये गये तथा आयुर्वेद/ यूनानी/ मेडिकल कालेजों की स्थापना की गयी। काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी, गुरूकुल कांगडी विश्वविद्यालय, हरिद्वार, तिब्बिया कालेज दिल्ली, राजकीय यूनानी कालेज, हैदराबाद आदि संस्थानों में चिकित्सा के पाठ्यक्रम प्रारम्भ किये गये। आज भी इन चिकित्सा स्नातकों को सम्पूर्ण चिकित्सा विद्या की जानकारी एवं प्रशिक्षण दी जाती है, तथा भारत सरकार के आदेश के अनुसार सभी वैधानिक अधिकार प्राप्त हैं। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात, हालाँकि तत्कालीन भारत की सरकारों ने चिकित्सा क्षेत्र में समन्वय की दिशा में सक्रियता प्रदर्शित करते हुए सन् 1948 में चोपड़ा कमेटी, 1950 में पंडित कमेटी, 1955 में देवा कमेटी, 1959 में उडुप्पा कमेटी आदि का समय-समय पर गठन इस उद्देश्य से किया ताकि एक राष्ट्रीय चिकित्सा प्रणाली का विकास हो सके लेकिन यथार्थ के धरातल पर यह सफल नहीं हो पाया। भारतीय परिवेश में भारतीय चिकित्सा पद्धतियों का विकास होना आवश्यक है, जिससे समन्वित चिकित्सा पद्धति विकसित हो सके, जिसमें आयुर्वेद, होम्योपैथी, योग, यूनानी, सिद्ध एवं एलोपैथी की महत्वपूर्ण भूमिका होगी। लेकिन इसे विड़म्बना ही समझा जाना चाहिये कि आज भी चिकित्सा पद्धतियों के समन्वय जैसी कोई चीज नजर आती हो। आज वैश्वीकरण के युग में ज्ञान सहित सभी विधाओं का आपस में हस्तान्तरण हो रहा है, वहीं चिकित्सा पद्धतियों के साथ भी यह बात होनी चाहिये, लेकिन व्यवहारिक तौर पर यह नहीं हो पा रहा है। वर्तमान में सभी चिकित्सा पद्धतियों के पाठ्यक्रम सहित प्रशिक्षण को मान्यता देने का काम अलग-अलग संवैधानिक अंगों (काउंसिल्स) द्वारा किया जा रहा है, साथ ही आयुष विभाग भी इस कार्य में मदद कर रहा है। इन सबके बावजूद समन्वीकृत राष्ट्रीय चिकित्सा पद्धति को राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति के रूप में घोषित करने का

काम नहीं हो पाया है।

इसका कारण कुछ हद तक चिकित्सा स्नातकों तथा अन्य प्रशासनिक पदों पर आसीन लोगों की कमजोर इच्छा शक्ति हो सकती है, जो सरकार के निर्णयों पर अपना प्रभाव डालते हैं। आज चीन, जापान, कोरिया, वियतनाम, थाईलैण्ड, इन्डोनेशिया जैसे देश अपनी पारम्परिक चिकित्सा पद्धतियों को अपनी राष्ट्रीय चिकित्सा पद्धति में शामिल कर अपने देश के रोगियों को लाभ पहुँचा रहे हैं, अत: आवश्यकता इस बात की है, कि लोगों को सभी चिकित्सा पद्धतियों का समेकित लाभ देने के लिये एक राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति की घोषणा हो, जिससे सभी के लिये स्वास्थ्य का सपना साकार होकर स्वस्थ राष्ट्र का निर्माण हो सके।

❁❁❁❁❁

*** डॉ. वी. के. शर्मा**
शर्मा क्लीनिक, भाटखेड़ा रोड़,
बिलासपुर, रामपुर (उत्तरप्रदेश)
लेखक नीमा उत्तरप्रदेश राज्य परिषद के उपाध्यक्ष हैं तथा स्थानीय शाखा बिलासपुर(रामपुर) उत्तरप्रदेश के सचिव हैं।

गर्भावस्था एवं योग

स्त्री के जीवन में गर्भावस्था का अत्यंत महत्व है, इस दौरान भी योग में वर्णित आसनों को काफी मददगार पाया गया है। गर्भावस्था के दौरान किए गये आसन शरीर को सक्रिय बनाते हैं तथा सामान्य प्रसव एवं बाद में भी शरीर के आकार को नियंत्रित रखने में मददगार सिद्ध होते हैं।

योगासन द्वारा गर्भावस्था में निम्न लाभ देखें जाते हैं:

* गर्भावस्था के अंतिम महीनों में उत्पन्न होनेवाली पैरों की सूजन में आराम मिलता है।

* गर्भावस्था के दौरान कब्ज की शिकायत नहीं होती है।

* यह मिचली, प्रात:काल होने वाली उल्टी एवं भावनात्मक आवेगों पर नियंत्रण रखने में मददगार होता है।

* इससे गर्भाशय मुख पर होनेवाला तनाव कम होता है तथा प्रसव वेदना कम होती है,एवं सामान्य प्रसव सम्पन्न कराने में मदद मिलती है। **गर्भावस्था के दौरान कुछ सावधानियाँ बरतकर योगासन किये जा सकते हैं।** इसे तीन भागों में बाँटा जाता है।

1. **प्रथम त्रैमास में किये जाने वाले योगासन:**

* **अर्धतितली आसन:** इसे आराम से बैठकर दोनों पैरों को फैलाते हुये,दाहिने पैर के टखनों को बायें पैर की जंघा पर रखने का प्रयास करना चाहिये,अपने दाहिने हाथ को मुड़े हुये पैर के घुटनों

पर रखना चाहिये, अब दाहिने पैर के टखनों को बायें हाथ से पकड़ लेना चाहिये,इसके बाद साँस अन्दर लेते समय दाहिने घुटने को उपर उठाना चाहिये तथा साँस बाहर छोड़ते समय घुटने को नीचे लाना चाहिये। शरीर का उपरी हिस्सा स्थिर रहना चाहिये। इसे पुन:बायें पैर से दोहराना चाहिये। इस प्रक्रिया में तनाव नहीं देना चाहिये।

लाभ: यह आसन कुल्हे तथा घुटनों की हड्डीयों में लचीलापन लाता है।

* **पूर्णतितली आसन:** इसे भी आराम से बैठकर,घुटनों को मोड़ते हुये,दोनों पैर के तलवों को एक साथ लाने का प्रयास करना चाहिये, जाँघों को पूरी तरह से ढीला छोड़ते हुये, दोनों हाथों से पैरों को दबाना चाहिये।

लाभ: इस आसन को करने से जंघा की माँसपेशियाँ लचीली हो जाती हैं, इससे

थकान मिट जाती है।

* **सुप्तउदरकर्षण आसन:** पीठ के बल लेटते हुए दोनों हाथों की अंगुलियों को आपस में फंसा लें, अब दोनों हाथों को सिर के नीचे लायें, घुटनों को मोड़ें और पैरों के तलवों को फर्श पर स्थित करें। अब साँस बाहर छोड़ते समय पैरों को दाहिनी तरफ लायें तथा घुटनों से

जमीन को छूने को प्रयास करें। ठीक उसी समय सिर को बांयी ओर मोडें जिससे पूरी रीढ़ की हड्डी स्थिर रहते हुये पूरा शरीर घूम जाय। अब इसी क्रम को दूसरी ओर से अर्थात् पैरों को बांयी ओर और सिर को दायीं ओर घुमाते हुये दोहराना चाहिये।

लाभ: यह आसन कब्ज एवं अपच की स्थिति को ठीक करते हुये रीढ़ की हडडी के जकड़न एवं तनाव को दूर करता है।

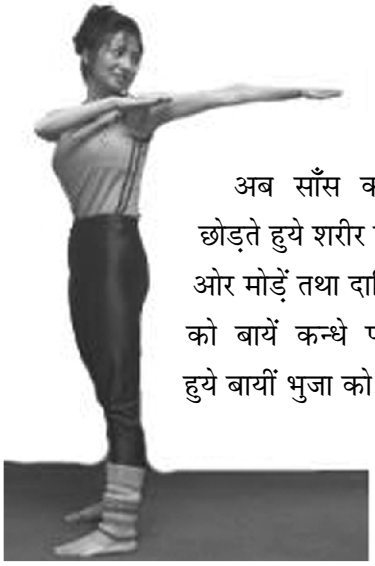

* **मार्जारि आसन:** सर्वप्रथम वज्रासन में बैठ जायें, कुल्हों को उपर उठायें और घुटनों के साथ दोनों पैरों को फर्श पर टिकाते हुये आगे की ओर झुकें और हाथों को फर्श पर लगाते हुये साँस को अन्दर लेते हुये सिर को आगे ले जायें और रीढ़ की हड्डी को इस तरह झुकायें कि पूरी पीठ अवतल सतह के रूप में दिखे,अब साँस छोड़ते हुये सिर को नीचे लायें तथा रीढ़ की हड्डी को उपर की ओर उठायें। अन्त में साँस छोड़ते हुये,पेट को अन्दर लें तथा कुल्हों को खीचें,सिर दोनों हाथों के मध्य तथा दृष्टि जंघा की ओर स्थित हो। इस आसन को करते समय शरीर को तनाव मुक्त रखना चाहिये।

लाभ: यह आसन कमर एवं कुल्हों की माँसपेशियों को सुडौल बनाता है तथा गर्दन एवं रीढ़ की हड्डीयों को लचीला बनाता है। यह स्त्री जननांगों को भी सामान्य प्रसव के लिये तैयार करता है।

* **कटिचक्रासन:** दोनों पैरों में एक मीटर की दूरी बनाते हुये खड़े हो जायें, साँस को अन्दर लेते हुये, दोनों हाथों को बाहों के स्तर तक लायें अब साँस को बाहर छोड़ते हुये शरीर को बांयी ओर मोड़ें तथा दाहिनें हाथ को बायें कन्धे पर रखते हुये बायीं भुजा को पीठ की ओर लपेटें तथा बायें कन्धे की ओर देखें, साँस को दो सेकेन्ड तक रोकें तथा साँस छोड़ते हुये पुरानी स्थिति में आयें। यह ध्यान रहे कि पैर जमीन पर मजबूती से स्थित हो। अब इसे दूसरी तरफ से दोहरायें।

लाभ: यह आसन कमर, जाँघ एवं कुल्हों की माँसपेशियों को लचीला बनाता है तथा शरीर को हल्का एवं तनावमुक्त रखता है।

* **ताड़ासन:** दोनों पैरों को एक साथ लगाते हुये तथा हाथों को अपनी तरफ से सीधे उपर की ओर उठाते हुये दोनों हाथों की अंगुलीयों को आपस में मिलाते हुये, हथेलियों को उपर की ओर रखें, हाथों को सिर के उपर लाते हुए साँस अन्दर लेकर भुजाओं को खींचें,छाती तथा एड़ी को उपर उठायें जिससे सारा भार अंगुलियों पर आ जाय अब साँस छोड़ते हुए एड़ी को नीचे लायें तथा दोनों हाथों को सिर के पास ले आयें। इस अवस्था में कुछ समय विश्राम के पश्चात पुन:दोहरायें।

लाभ: यह आसन मानसिक एवं शारीरिक संतुलन के साथ-साथ पूरी रीढ़ की हड्डी को सीधा एवं लचीला बनाता है। यह 'रेक्टसएब्डोमिनिस' माँसपेशी में कसाव ला देता है।

उत्तानासन: इस आसन में सीधे खड़े होकर पैर के मध्य एक मीटर की दूरी रखते हुये एडियों को विपरीत दिशा में तथा हाथों की अंगुलियों को आपस में बांधकर उन्हें शरीर के सामने लटकता छोड़ देना चाहिये। अब घुटनों को मोड़ते हुये, कुल्हों को नीचे लाने का प्रयास करना चाहिए। अब घुटने सीधे करते हुये खड़े होने की स्थिति में आ जाना चाहिये।

लाभ:- यह आसन गर्भाशय, जंघा एवं पीठ की माँसपेशियों के लिये अत्यन्त लाभकारी है।

कन्धरासन: सीधे पीठ के बल लेट जायें, अपने घुटनों को मोड़कर पैरों को फर्श पर टिकायें तथा एड़ियों से कुल्हों को छूने का प्रयास करें, एड़ियों एवं घुटनों को एक सीध में लायें तथा दोनों हाथों से एड़ियों को पकड़ें, अब इस अवस्था में छाती एवं नाभि के स्तर तक शरीर को यथासम्भव उपर उठाने का प्रयास करें, अब अन्तिम स्थिति जिसमें पूरा शरीर सिर, गर्दन एवं एड़ी के सहारे स्थित रखें, धीरे-धीरे एड़ियों को पूर्व की अवस्था लाते हुये आराम करें।

लाभ: यह आासन कमर दर्द में विशेष लाभकारी है। यह आंतों एवं उदर के अन्य

अंगों को सक्रिय बनाते हुये पाचन की प्रक्रिया में सुधार लाता है। यह आसन स्त्री जननांगों की कार्यक्षमता को बढ़ाता है तथा जिनमें बार-बार गर्भपात की सम्भावना होती है, उनमें विशेष लाभकारी है। इस आसन को योग विशेषज्ञ के निर्देशन में ही करना चाहिए तथा गर्भावस्था के अन्तिम महीनों में नहीं करना चाहिए। इस आसन के द्वारा 'ब्रीचबेबी' को सफलतापूर्वक घुमाकर सामान्य स्थिति में लाया जा सकता है।

२. द्वितीय त्रैमास में किये जाने वाले योगासन:

मत्स्यक्रीड़ासन: पेट के बल लेट जायें,दोनों हाथों की अँगुलियों को आपस में बाँधकर सिर के नीचे रख लें, अब बायें पैर को मोड़ते हुये, छाती के रिब्स के पास लायें,दाहिना पैर को सीधे रखें, बायें हाथ को मोड़ते हुये कोहनी एवं घुटनों पर आराम की मुद्रा बना लें। यदि इस स्थिति में आराम न महसूस करें तो दाहिने ओर से इस क्रम को दोहरायें।

लाभ: इस आसन को करने से पाचन क्रिया ठीक होती है तथा कब्ज दूर होता है। यह पैर को जानेवाली तंत्रिकाओं को सक्रिय बनाता है। इस आसन को भी गर्भावथा के अन्तिम महीनों में नहीं करना चाहिए।

वज्रासन: इस आसन को करने के लिये फर्श पर घुटनों के बल बैठ जायें, दोंनों पैरों के अंगूठों को साथ मिलाते हुये, एड़ियों को अलग करते हुये अब धीरे से कुल्हों को दोंनों पावों के उपर इस प्रकार लगायें कि एड़ियां जांघ के किनारों को छुयें, दोनों हाथों को घुटनों के उपर इस प्रकार लगायें ताकि हथेली नीचे की ओर स्थित हो। इस आसन में पीठ एवं सिर सीधे होने चाहिए तथा नमाज अदा करने जैसी मुद्रा बननी चाहिए। इस आसन को भोजन ग्रहण करने के बाद भी किया जा सकता है।

लाभ: यह आसन पाचन क्रिया को तो ठीक करता ही है, साथ ही हाइपरएसिड़िटी को भी कम करता है। गर्भावस्था के दौरान इस आसन से कटि प्रदेश में खून का बहाव ठीक होता है तथा इस क्षेत्र की माँसपेशियां मजबूत होकर सामान्य प्रसव सम्पन्न कराने में मददगार होती है।

भद्रासन: उपर बतायी गयी विधि के को जितना अधिक हो सके, दूर ले जाने का प्रयास करें, अंगूठे फर्श को छूते रहें, अब पैरों को अलग करते हुये ऐसी स्थिति बनायें कि कुल्हे एवं पेरिनीयम (जननांग की माँसपेशी) फर्श को छुये। इसमें अधिक तनाव नहीं लेना चाहिए।

लाभ: इसके लाभ वज्रासन के समान है।

द्वितीय त्रैमास में इन आसनों के अलावा मार्जारि आसन, ताड़ासन, कटिचक्रासन आदि भी लाभकारी होते हैं।

तृतीय त्रैमास में किये जाने वाले योगासन: अर्द्धतितली आसन, पूर्णतितली आसन, सुप्तउदरकर्षण आसन आदि को विशेषज्ञ की रेखदेख में बिना तनाव दिये करना चाहिये।

रस शास्त्रः आयुर्वेद की चमत्कारिक विधि

आयुर्वेदिक चिकित्सा के बारे में लोगों के मन में एक धारणा व्याप्त है कि आयुर्वेदिक दवायें शीघ्रता से प्रभाव नहीं दर्शाती है तथा इसके साइडइफेक्ट नहीं होते हैं। यदि इस मिथक को तोड़ने की कोई आयुर्वेदिक चिकित्सा विधा है, तो वह रस शास्त्र है। रस शास्त्र का आधार द्रव्य पारद है, जिसे आधुनिक वैज्ञानिक एक खतरनाक द्रव्य मानते हैं, जबकि आयुर्वेदीय रस-शास्त्र के ज्ञाता इसे औषधि के रूप में प्रयुक्त कराते हैं। फर्क इतना है, कि आयुर्वेदिक चिकित्सा में पारद का प्रयोग संस्कारित कर किये जाने का प्रावधान है। संस्कारित कर प्रयोग किये जाने से इसके घातक गुण समाप्त हो जाते हैं तथा चमत्कारिक औषधीय प्रभाव दृष्टीगोचर होते हैं।

रस-शास्त्र के जानकार विभिन्न धात्विक औषधियों को भस्मीकृत कर पारद के साथ प्रयोग कराते हैं। रस-शास्त्र में धातुओं, पारद, हीरक और अन्य खनिज द्रव्यों, विष, उपविष, रत्नों आदि का प्रयोग भस्मीकृत एवं संस्कारित कर कराया जाता है। वेदों में स्वर्ण एवं चाँदी का प्रयोग विभिन्न धार्मिक अनुष्ठानों को पूर्ण करने हेतु किया जाता था। छठी एवं सातवीं शताब्दी में इस विधा का विकास वैज्ञानिक वर्गीकरण के साथ सामने आया। बुद्ध धर्मावलम्बी नागार्जुन को सबसे पहले पारद का प्रयोग किये जाने का श्रेय जाता है। उन्होंने कहा था कि मैं पारद का प्रयोग इस दुनियां से गरीबी को मिटाने के लिये कर रहा हूँ। उनके सिद्धान्त के अनुसार 'यथा लोहे तथा देहे' सम्भवतः रसशास्त्र के विकास में मील का पत्थर साबित हुआ। आयुर्वेदिक चिकित्सा विधा में जिस विज्ञान में पारद के साथ अन्य खनिज द्रव्यों का प्रयोग औषधि के रूप में किया जाता है, रस शास्त्र के नाम से जाना जाता है। यह माना जाता है, कि पारद को यदि संस्कारित कर औषधि के रूप में प्रयोग कराया जाय तो यह दोषों को साम्यावस्था में लाने में मददगार होती है तथा शरीर पर इसका अत्यंत लाभकारी प्रभाव देखने में आता है। यह रोगों से बचाव के साथ-साथ वृद्धावस्था से सम्बंधित बीमारियों में काफी प्रभावी होती है। यह रसायन, व्रणशोधक, रोपक, कृमिघ्न गुणों से युक्त होता है। इसका प्रभाव बल्य एवं वृष्य होता है।

<u>रस-शास्त्र की विधा का वर्गीकरण एवं प्रयुक्त द्रव्यों के गुणः</u> रस-शास्त्र की विधा को मुख्यतया 'किमियागिरी' यानि पारद से स्वर्ण बनाने के लिये किया जाता था। आचार्य चरक के अनुसार जिस व्यक्ति ने स्वर्ण का सेवन किया हो उसके शरीर में किसी भी प्रकार के विष अपना घातक प्रभाव नहीं दर्शाते हैं। आचार्य चरक ने कहा है, कि स्वर्ण की शरीर में उपस्थिति मात्र से सभी प्रकार के विषों खासकर 'गरविष' भी अपना प्रभाव खो देते हैं।

रस-शास्त्र की विधा में शोधन का अपना महत्व है। किसी भी रस औषधि को बिना शोधन कराये प्रयोग नहीं किया जाता है। पारद के अठारह संस्कार शोधन के लिये आवश्यक हैं। ये संस्कार पारद एवं अन्य खनिज द्रव्यों में मौजूद नुकसानदायक तत्वों के प्रभाव को निकालकर औषधिय गुणों को बढ़ा देते हैं। उदाहरण के तौर पर यदि रजत (चाँदी) को बगैर शोधन के प्रयोग कराया जाय, तो यह शरीर में जलन, कब्ज, शुक्रनाश, बलनाश, चक्कर आना तथा कई बीमारियों के कारण बनते हैं। इसी प्रकार शिलाजीत का बिना शोधन के कराया गया प्रयोग भूख कम लगना, कब्ज, चक्कर आना एवं दौरे पड़ना जैसे लक्षणों की उत्पत्ति का कारण बनता है।

<u>रस-शास्त्र का आधुनिक आयुर्वेदिक चिकित्सा में महत्वः</u> रस-शास्त्र का आधुनिक आयुर्वेदिक चिकित्सा में अत्यंत महत्व है। रस औषधियाँ अत्यंत तीव्र प्रभाव दर्शाती हैं लेकिन इनका प्रयोग सावधानी एवं सुरक्षित मात्रा में ही होना चाहिये। कहा गया है, कि रस औषधियों के प्रयोग से पूर्व रोगी का शोधन अत्यंत आवश्यक है। यह सत्य है, कि रस शास्त्र में प्रयुक्त औषधियाँ बहुसंख्यक वर्ग में प्रयुक्त नहीं करायी जा सकती हैं, किन्तु यह जीर्ण रोगियों में चमत्कारिक प्रभाव दिखाती हैं।

<u>रस औषधियां एवं आधुनिक चिकित्सा विज्ञानः</u> आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के अनुसार रस औषधियों में प्रयुक्त कराया जाने वाला द्रव्य पारद एक घातक प्रभाव दर्शाने वाला द्रव्य है। इसका घातक प्रभाव इसके स्वयं के गुणों के कारण होता है न कि इसमें उपस्थित द्रव्यों के कारण। अतः किसी भी

स्थिति में इसका आंतरिक प्रयोग नहीं हो सकता है। हाँ पारे के कुछ वर्ग कम घातक प्रभाव वाले होते हैं जिनमें आर्गेनिक मर्करी अधिक खतरनाक होता है। अभी हाल में ही कनाड़ा के स्वास्थ्य मंत्रालय ने अपने देश के नागरिकों को पारद, लेड एवं आर्सेनिक से बनी हुयी हर्बल दवाओं को न लेने की सलाह दी है। इनके अधिक मात्रा में लम्बे समय तक प्रयोग से गुर्दे, मस्तिष्क एवं यकृत पर हानिकारक प्रभाव देखे गये हैं।

रस औषधियों के बारे में आयुर्वेदिक चिकित्सकों के मत: आयुर्वेदिक विषेशज्ञों के अनुसार शोधन एवं मारण के उपरान्त बनायी गयी औषधियाँ 'नैनो पार्टिकल्स' के रूप में अपने मूल धातुओं के साथ कोशिका के अन्दर प्रविष्ट होकर अपना प्रभाव दर्शाती हैं। डॉ. के. शिवरामा प्रसाद, एन.आर.एस.आयुर्वेद कॉलेज, विजयवाडा के अनुसार रस औषधियाँ कम मात्रा में भी तीव्र प्रभाव दर्शाती हैं। रस औषधियों को यदि शहद के साथ लिया जाये तो ये शरीर में अवशोषित होकर शीघ्र ही कोशिका के स्तर पर पहुँच जाती हैं। उनका कहना है, कि रस औषधियों का संरक्षण काष्ठ औषधियों की अपेक्षा आसान होता है। रस औषधियों की कार्मुक्ता, प्रभाव एवं लम्बा उपयोग आयुर्वेदिक चिकित्सकों के लिये पहली पसंद का कारण बनता है।

रस औषधियों के प्रयोग में चिकित्सकों को आने वाली परेशानियाँ जैसे: इसके निर्माण में लगने वाला समय, शोधन एवं मारण की जटिल प्रक्रिया तथा बाजार में मिलने वाली रस औषधियों की कमजोर गुणवत्ता के कारण उत्पन्न दुष्प्रभाव इसे सामान्य प्रेक्टिस से दूर कर देती हैं। इसके अलावा इन औषधियों के काफी महँगे होने के कारण इसे आम आदमी के बजट से बाहर ही समझा जाता है। यदि हम रसशास्त्र के इतिहास को देखें तो यह कई जटिल बीमारियों के इलाज में कारगर है। कैंसर जैसी बीमारियों की चिकित्सा में रस औषधियों का प्रयोग चमत्कारिक प्रभाव दर्शाता है। आवश्यकता है, इस दिशा में और अधिक शोध कर इसके फार्मोकोलॉजिकल अध्ययन की ताकि यह आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के वैज्ञानिकों एवं चिकित्सकों के बीच उत्पन्न भय को दूर कर सके।

रस-शास्त्र का उदभव आयुर्वेदीय औषधियों के विकास क्रम का ही एक भाग है। वानस्पतिक औषधियों में जो कुछ कमियाँ रह गयी थी, जैसे: शीध्रतर काम न करना, मात्रा में अधिक होना, अरूचिकर होना आदि को दूर करने के लिये रस-शास्त्र का विकास एक विकल्प के रूप में हुआ। रस-शास्त्र की औषधियों में प्रयुक्त द्रव्य जैसे: अभ्रक, माक्षिक, गन्धक, गैरिक एवं धातु द्रव्य सोना, चाँदी, ताम्र आदि का उपयोग कैसे हो इस पर काफी विचार विमर्श किया गया है तथा कुछ परिकल्पनाओं जिनकी पुष्टि होनी बाकी है, वे निम्न हैं:

* रस-शास्त्र में प्रयुक्त होने वाले द्रव्य प्राय: अकार्बनिक है, तथा हमारा शरीर कार्बनिक तत्वों से निर्मित है। अत: ये शरीर में आसानी से नहीं मिल पाते हैं, इन द्रव्यों को शरीर में प्रयोग करने से पूर्व रस-शास्त्र में वर्णित विधियों द्वारा तैयार करना आवश्यक होता है। इन विधियों में विभिन्न वानस्पतिक द्रव्यों की भावना, मर्दन, निषेचन, स्वेदन आदि कर्म किये जाते हैं, तथा इन्हें पुट में बार-बार अग्नि देकर सूक्ष्म से सूक्ष्म कणों में परिर्वतित किया जाता है। आधुनिक वैज्ञानिक परिकल्पना के अनुसार ये खनिज द्रव्य एवं धातुयें इन प्रक्रियाओं से सूक्ष्मतम कणों में जिन्हें 'नैनोपार्टिकल्स' कहते हैं, में परिवर्तित हो जाते हैं। यह तीन क्रम में होता है:

* विभिन्न मशीनों द्वारा कठिन द्रव्यों का सूक्ष्मतम कणों में परिवर्तन।

* विभिन्न वानस्पतिक द्रव्यों द्वारा भावनाओं से भी आकार का सूक्ष्म हो जाना।

* पुट द्वारा प्रदान की गयी अग्नि से भी आकार का सूक्ष्म होना।

बार-बार पुट देने से कणों के सूक्ष्मकणों में परिवर्तित हो जाने से ये कोशिका झिल्ली से शीघ्र ही अवशोषित होकर अपने टारगेट पर पहुँच जाते हैं। इन कणों को रक्त से अपने कार्यस्थल तक पहुँचानें में 'चीलेट थ्योरी' काम करती है। चीलेट वैसे कार्बनिक द्रव्य हैं, जो धातुओं के धनायन के साथ कॉम्पलेक्स बनाकर उनको टारगेट स्थल पर पहुँचाते हैं। यह क्रिया 'बायोएवेलेबिलिटी' कहलाती है।

* **डॉ. देवेन्द्र जोशी**
रीड़र, रस-शास्त्र विभाग
हिमालयी आयुर्वेदिक कालेज, ऋषिकेश (उत्तराखण्ड)

होम्योपैथी चिकित्सा पद्धतिः इतिहास के उतार चढाव

होम्योपैथी के इतिहास पर यदि गौर करें तो यह किसी फिल्मी ड्रामे से कम नहीं। होम्योपैथी सन् 1800 ई.में यूरोप एवं अमेरिका जैसे देशों में काफी लोकप्रिय थी एवं अमेरिकी साहित्कारों,धार्मिक नेताओं एवं शिक्षित लोगों ने इस चिकित्सा पद्धति का पूर्ण समर्थन किया था,लेकिन जब यह पद्धति अपने उत्कर्ष पर थी,तभी स्थापित चिकित्सा पद्धति से इसका मुखर विरोध भी प्रारम्भ हो गया था। होम्योपैथी की शुरूआत इसके जनक सैमूवल हैनीमैन(1755-1843) एक जर्मन चिकित्सक ने की थी। हैनीमैन ने सबसे पहले होम्योपैथी शब्द को ग्रीक शब्द होम्यो-सिमिलर,पैथी-बीमार से लिया था तथा उनके चिकित्सा सिद्धान्त का आधार भी यही था। 'लॉ ऑफ सिमिलर' के सिद्धान्त को पूर्व में हिपोक्रेट्स,ग्रीक एवं चीनी दार्शनिकों ने भी माना था। लेकिन हैनीमैन वो पहले व्यक्ति थे,जिन्होंने इसे चिकित्सा विज्ञान का रूप दिया। उन्होनें 1789 में 'लॉ ऑफ सिमिलर' को प्रायोगिक तौर पर उपयोग में लाया जब वे उस वक्त के एक विख्यात चिकित्सक विलियम कूलेन की पुस्तक का अनुवाद कर रहे थे। कूलेन की पुस्तक के एक बिन्दु जहाँ सिनकोना की छाल को मलेरिया के रोगी में प्रयोग कराने का कारण इसका कड़वा एवं एस्ट्रिन्जेन्ट होना बतलाया था,हैनीमेन के लिये यह एक निष्कर्ष का बिन्दु बन गया। हैनीमेन ने इस पर टिप्पणी करते हुये लिखा कि कूलेन का यह सोचना पूर्ण नहीं है तथा सिनकोना की छाल के मलेरिया के रोगी में प्रभाव का कारण कुछ और ही है। उनका कहना था,कि सिनकोना से और भी अधिक कड़वे एवं एस्ट्रिन्जेन्ट द्रव्य हैं परन्तु वे मलेरिया के रोगी में कार्य क्यों नहीं करते?उन्होनें इसकी व्याख्या करते हुये कहा,कि इस पौधे के रसायन का मैनें स्वयं पर लगातार तब तक प्रयोग किया जब तक कि इसके दुष्प्रभाव जैसे: कंपकपी के साथ बुखार एवं अन्य मलेरिया सदृश लक्षण उत्पन्न न हो गये। हैनीमैन ने यह निष्कर्ष दिया कि इस पौधे की छाल से मलेरिया के रोगी में लाभ इसलिये मिला क्योंकि इसके सामान्य प्रयोग से भी मलेरिया सदृश लक्षण प्राप्त हुये। इस प्रकार हैनीमैन ने सबसे पहले कुलेन के काम से प्रभावित होकर अपने मत को स्थापित किया। हैनीमैन का नाम उस वक्त के अच्छे लेखक एवं अनुवादकों में था। उन्होनें बीस से अधिक वैज्ञानिक पुस्तकों का अनुवाद किया था। जब वे मात्र चौबीस साल के थे तब ही वे लगभग सात भाषाओं की जानकारी रखते थे। उन्होनें 'फार्मास्यूटिकल लेक्सीकॉन' नामक पुस्तक के चार भागों की रचना की। कूलेन की पुस्तक को अनुवादित करने के बाद लगभग छ:वर्ष तक हैनीमैन ने स्वयं,अपने परिवार एवं अपने निकट के लोगों पर प्रयोग किये। सन्1796ई. में उन्होनें अपने इन प्रायोगिक अनुभवों को 'हफलेन्ड़ जर्नल' में प्रकाशित किया जो उस वक्त का प्रतिष्ठित जर्नल था। उसी वक्त सन् 1798ई. में एड्वर्ड जैनर ने स्मॉलपॉक्स के टीके को काऊपॉक्स की छोटी मात्रा वैक्सीन के रूप में विकसित किया था। जैनर के इस काम को उस वक्त के रूढ़ीवादी चिकित्सकों ने भी स्वीकार किया था, जबकि हैनीमैन के सिद्धान्तों को स्वीकृति नहीं मिली थी। सत्य तो यह था कि हैनीमैन के सिद्धान्त जिसे उन्होनें होम्योपैथी नाम दिया था, को अधिकांश मेडिकल जर्नलों में आलोचना से सम्बंधित लेखों का सामना करना पड़ा था। हैनीमैन को नापसंद किये जाने का एक बडा कारण, उनका एक समय में निश्चित मात्रा में एक ही दवा का प्रयोग करना था। वह एक दवा को सावधानीपूर्वक तैयार कर छोटी मात्रा में प्रयोग कराते थे, जिसमें खर्च भी कम आता था। धीरे-धीरे उन्होनें दवाईयों के वितरण का कार्य भी स्वयं प्रारम्भ कर दिया,जिसे जर्मनी में गैरकानूनी माना गया। इसी कारण उन्हें सन् 1820 में दोषी करार देकर गिरफ्तार कर लिया गया। इसके बाद उन्होनें लेपिजिग छोड़कर कोथेन नामक स्थान पर वहाँ के ड्यूक से अनुमति लेकर अपनी प्रेक्टिस एवं औषधि वितरण का कार्य प्रारम्भ किया।

यह भी एक सत्य था, कि इतने विरोध के वाबजूद भी होम्योपैथी चिकित्सा विकसित होती चली गयी। यह केवल इसलिये सम्भव हुआ, क्योंकि इससे बीमार व्यक्तियों को फायदा मिल रहा था तथा स्थापित चिकित्सा पद्धति के निष्प्रभावी एवं दुष्परिणाम सामने आ रहे थे। यह बात चिकित्सा जगत के इतिहास जानने वालों को मालूम है,कि तब की स्थापित चिकित्सा पद्धति रोगियों में लाभ के स्थान पर हानि पहुँचा रही थी। सन् 1800ई. के मध्य रक्त विस्रावण एवं जलौका(लीच) का प्रयोग चिकित्सा में किया जाने लगा था। यह चिकित्सा विधा बड़ी लोकप्रिय हुयी थी। अमेरिकी चिकित्सा के पिता 'बैन्जामिन रस' ने इसे सभी क्रानिक बीमारियों में उपयोगी बतलाया था। केवल सन् 1833 ई.में 41करोड़ जलौकाओं को फ्राँस से मँगवाया गया था। अमेरिका की एक फर्म ने पाँच लाख

जलौकाओं को 1856 में केवल रक्त विस्रावण के लिये आयातित किया था। इन चिकित्सा विधाओं के अलावा तब के चिकित्सक पारे, शीशा एवं संखिया का प्रयोग चिकित्सा में कर रहे थे। उस वक्त की दयनीय चिकित्सा व्यवस्था में होम्योपैथी का विरोध स्वाभाविक था। नैथैन स्मिथ डेविस जो अमेरिकन मेडिकल एसोसिएशन के प्रमुख थे, उन्होनें चिकित्सा शिक्षा का विस्तार किया, तथा उनके कार्यालय में चिकित्सकों के पंजीकरण सहित अध्ययन के नियमित दिशा निर्देशों को विस्तारित कर मान्यता दिये जाने की परंपरा की शुरूआत हुयी तथा विभिन्न विषयों में अध्ययन प्रारम्भ हुआ। इन सभी व्यवस्थाओं के वावजूद भी अठारवीं एवं उन्नीसवीं शताब्दी में चिकित्सा अवैज्ञानिक, कठिन एवं दु:खदायी थी। होम्योपैथी का मुखर विरोध इसलिए भी हुआ, क्योंकि वह स्थापित चिकित्सा पद्धति के समक्ष एक चुनौती उत्पन्न कर रही थी। उस वक्त के रूढ़ीवादी चिकित्सक जड़ी बूटियों के जानकार, मिडवाइफस एवं अन्य चिकित्सा पेशेवरों को हेय की दृष्टि से देखने लगे थे, क्योंकि वे प्रशिक्षित नहीं थे। हालाँकि होम्योपैथी के कई जानकारों ने नियमित चिकित्सा प्रशिक्षण लिया था। इसके अलावा होम्योपैथी को विभिन्न दवाईयों की कम्पनियों के व्यवसाय पर हो रहे नकारात्मक प्रभाव के कारण भी आलोचना झेलनी पड़ रही थी। होम्योपैथ चिकित्सक इन दवाओं के रोगों के लक्षणें को दबा देने के कारण इन्हें मरीजों को न लेने की सलाह देने लगे थे, क्योंकि उनका मानना था, कि लक्षण मात्र को दबा देने से रोग की स्थिति और भी भयावह हो सकती है। ❁❁❁❁❁

शय्यामूत्र: होम्योपैथिक समाधान

बच्चों में रात में बिस्तर पर मूत्र त्याग करने की प्रवृति एक सामान्य समस्या है,जिससे माँ बाप अपने बच्चों को अक्सर डाँटते हैं। यह बच्चे में मानसिक तनाव उत्पन्न करता है। इस रोग की होम्योपैथी में सफल चिकित्सा उपलब्ध है, जिसकी संक्षिप्त जानकारी देने का प्रयास इस लेख में किया गया है।

शय्यामूत्र क्या है?

चार वर्ष की आयु के बच्चे यदि दिन के समय तथा छ:वर्ष की आयु से बड़े बच्चे रात के समय मूत्र त्याग अनजाने में कर देते हैं तथा यह मूत्र त्याग हफ्ते में दो बार तीन माह तक निरन्तर हो तो इसे 'शय्यामूत्र' कहते हैं। सामान्यतया मानसिक आयु पाँच वर्ष होने तक बच्चों में मूत्राशय पर नियंत्रण हो जाता है, परन्तु कई बच्चों में यह नियंत्रण समुचित न हो पाने के कारण यह 'शय्यामूत्र' का कारण बनता है।

शय्यामूत्र के प्रकार:-

मूत्राशय पर नियंत्रण के आधार पर शय्यामूत्र मुख्यतया दो प्रकार होते हैं

* रात के समय होने वाला शय्यामूत्र
* दिन के समय होनेवाला शय्यामूत्र

एक दूसरे वर्गीकरण के अनुसार इसको प्राईमरी एवं सेकन्डरी दो भागों में बाँटा गया है।

अधिकांशत: इसके पीछे कोई वास्तविक कारण नहीं देखा जाता है,केवल पाँच प्रतिशत बच्चों में ही इसके कुछ कारण पता चल पाते हैं।

शय्यामूत्र को उत्पन्न करने वाले कारक:-

आनुवंशिक,एडीएच हार्मोन का रात के समय निकलना,मूत्राशय के स्फिंक्टर का अपरिपक्व होना,अत्यधिक तनाव, मानसिक आघात,घातक चोट, मूत्र संक्रमण, मलद्वार का मूत्राशय पर अधिक दबाव, डायबिटीज,तत्रिंका तंत्र में अवरोध,पेशाब की नली का अन्यत्र खुलना, मूत्र को आवश्यकता से अधिक देर तक रोके रहना आदि कारण इसके अन्तर्गत आते हैं।

अधिकांशत: छ:वर्ष की आयु से कम के बच्चों में दवा का सेवन नहीं कराना चाहिये क्योंकि यह स्वत: ही ठीक हो जाता है,परन्तु कुछ निम्नवत बातें ध्यान देने योग्य हैं:

* बच्चे के सोने से पूर्व मूत्रविसर्जन अवश्य करवायें।
* बच्चे से गीला बिस्तर,गीले कपडें स्वयं बदलने को कहें।
* बिस्तर गीला करने पर बच्चे को कोई दन्ड न दें।
* सोने से दो तीन घन्टे पूर्व कोई भी पेय पदार्थ न दें।
* शयन से पूव बच्चे को कोई कला(आर्ट)बनाने को कहें।
* चिकित्सक के सलाह के अनुसार,एलार्म थैरैपी,मूत्र की जाँच, एक्सरे-एलएसस्पाइन, अल्ट्रासाउन्ड, यूरोडाइनमिकफ्लो आवश्यकता के अनुरूप करवायें ।

होम्योपैथिक चिकित्सा पद्धति में चिकित्सक लक्षणों को आधारभूत बनाकर उपयुक्त दवा का चयन करते हैं। अधिकांशतया निम्न होम्योपैथिक दवाईयाँ इस्तेमाल की जाती हैं:-

एपिस मेल, अर्जनटमनाईट्रिकम, आरसिनकएल्बम, बेनजोइकएसिड, कास्टिकम, इक्वीसीटम, क्रियोजोट, नेट्रमम्यूर, नाईट्रिकएसिड, पल्साटेला, रसटाक्स, सिपिया, फ्लोरिकएसिड,

नोट:-दवाईयों का सेवन होम्योपैथिक चिकित्सक की सलाह से ही करें,स्वयं दवा लेने पर उसके विपरीत प्रभाव भी सामने आ सकते हैं।

❁❁❁❁❁

* डॉ. पंकज पंत, बी.एच.एम.एस.
(लेखक विभिन्न होम्योपैथिक कालेजों में प्रवक्ता रह चुके हैं।)

अच्छी नींद के लिये दस टिप्स

आजकल की भागदौड़ भरी जिन्दगी में यदि आप अच्छी नींद नहीं ले पाते हैं या आप देर तक जागने के आदि हैं तो आप की सुबह और दोपहर का काम निश्चित ही प्रभावित होता है। विभिन्न कारणों जैसे अकस्मात् आयी परेशानी जैसे वित्तीय समस्यायें,नौकरी जाने का भय,पारिवारिक रिश्तों का तनाव, घर की जिम्मेदारियाँ आदि हमारी अच्छी नींद को प्रभावित करती है। यदि आपको नींद न आने की परेशानी हो तो आप अपनी आदतों में निम्न परिवर्तन लाकर इस परेशानी से छुटकारा पा सकते हैं:

* बिस्तर पर हमेशा जल्दी एवं निश्चित समय पर जायें,दैनिक नियमित दिनचर्या का पालन करें जिससे आपकी सोने एवं जगने का चक्र नियमित हो सके।

* सोते समय कभी भी अधिक मात्रा में पानी का सेवन न करें। सोने से कम से कम दो घन्टे पूर्व हल्का डिनर लें। आप को सीने में जलन जैसी तकलीफ हो तो भोजन में अधिक मिर्च मसाले का सेवन न करें। सोते समय अधिक मात्रा में लिया गया जल बार-बार पेशाब जाने की प्रवृति उत्पन्न कर रात की अच्छी नींद को खराब कर सकता है।

* कुछ उद्दीपक जैसे चाय,कॉफी,शराब आदि हमें जगाकर रखते हैं तथा इनका अधिक मात्रा में सेवन हमें नशे का आदि बना देते हैं। इनको अचानक छोड़ने पर नींद न आने की जैसी समस्या उत्पन्न हो जाती है। सोते समय धूम्रपान भी खतरनाक होता है। अधिक मात्रा में निकोटीन या कैफीन का सेवन भी हमारे शरीर में संग्रहित होकर धीरे-धीरे ही बाहर निकलता है तथा शरीर में लगातार उद्दीपक प्रभाव बनाये रखता है।

* नियमित व्यायाम एवं शारीरिक सक्रियता जैसे: एरोबिक व्यायाम हमें स्वभाविक थकान उत्पन्न कर अच्छी नींद लानें में सहायक होती है। लेकिन सोने से ठीक पहले किया गया व्यायाम नींद को प्रभावित करता है।

* शयन कक्ष को शान्त एवं हल्के प्रकाशयुक्त,नियंत्रित तापमान एवं नमी रहित बनाकर अच्छी नींद ली जा सकती है। इसके अलावा पर्दे,कम्बल एवं बिना आवाज के पंखे एवं जनरेटर आदि भी शान्तिपूर्ण एवं सुखी निद्रा में सहायक होते हैं।

* दिन में सोने से यथासंभव बचना चाहिए। यदि दिन में आराम करना ही हो तो आधे घन्टे से अधिक नींद नहीं लेनी चाहिए। यदि आप रात्रि में देर तक कार्य करते हैं तो दिन में अपने घर की खिड़कीयों एवं दरवाजों को अच्छी प्रकार से कवर कर दें, ताकि सूर्य का प्रकाश आपके शरीर की बायोलॉजिकल घड़ी को न बिगाड़ सके तथा आप अपनी स्वभाविक नींद लें सकें।

*अच्छी नींद के लिये अच्छे बिस्तर का होना आवश्यक है,बिस्तर आरामदायक एवं पर्याप्त स्थान युक्त होना चाहिए यदि आप बिस्तर शेयर कर रहें हों तो अच्छी नींद के लिये जगह पर्याप्त होनी चाहिये।

*कुछ लोग सोने से पूर्व मधुर संगीत,रूचिपूर्ण पठन या गुनगुने पानी से सावर बाथ लेना पसन्द करते है, यह अच्छी नींद लाने में सहायक हो सकता है।

*नींद न आने पर नींद की गोलियों का प्रयोग नुकसानदायक हो सकता है तथा यह अन्य दवाओं के प्रभाव को बदल सकता है। नींद की दवाओं को कभी भी एल्कोहल के साथ नहीं लेना चाहिये। यदि आप नींद की दवाओं का सेवन करते हैं, तो धीरे-धीरे इनकी मात्रा कम करते हुए छोड़ने का प्रयास करना चाहिये।

*नींद न आने की दशा में अश्वगंधा,ब्राह्मी,शंखपुष्पी,तगर एवं सर्पगंधा आदि का प्रयोग सामान्य नींद लाने में सहायक होता है। यह मस्तिस्क की तंत्रिकाओं को पोषण प्रदान करता है। नस्य एवं शिरोधारा भी तनावमुक्त कर अच्छी नींद लाने में सहायक होती है।

❀❀❀❀❀

***डा. दीपक सिरूडे**
आरोग्य निकेतन, जलगाँव महाराष्ट्र
बी.ए.एम .एस.

विश्व का सबसे पहला अंगदाता नहीं रहा

रोनाल्ड हैरिक है कि जिन्हें दुनिया के सबसे पहले अंगदाता हौने का गौरव प्राप्त था,अब इस दुनिया में नहीं रहे। रोनाल्ड हैरिक की मृत्यु अमेरिका में हृदय रोग के कारण हुई । रोनाल्ड ने 23 सितम्बर 1954 को सबसे पहले अपना एक गुर्दा अपने भाई रिचर्ड को दान में दिया था। रोनाल्ड तब केवल मात्र 23 साल के थे। उक्त गुर्दे से उनके भाई रिचर्ड सर्जरी के बाद 8 वर्ष तक जिन्दा रहे थे। इस सर्जरी के मुख्य सर्जन डा. जोसेफ मूरे को नोबेल सम्मान दिया गया था।

११ वर्ष पुराने भ्रूण से पैदा हुई बच्ची

ब्रिटेन में 11वर्ष पूर्व निषेचित किए गये भ्रूण के प्रयोग से एक बच्ची ने जन्म लिया। इस भ्रूण को 11 वर्ष पूर्व मिडलेन्ड फर्टिलटी सर्विसेज नामक केन्द्र में संग्रहित कर रखा गया था। यह उन दिनों की बात है,जब लीसा एवं उनके पति एड्रियन सेफर्ड इन-विट्रोफर्टीलाइजेशन के लिए उक्त केन्द्र में आये थे, तब लीसा इन्डोमट्रियोसिस एवं पालीसिस्टिक ओवरी से पीड़ित थी। उक्त बीमारियों के कारण ही उन्होने इन-विट्रोफर्टीलाइजेशन कराने का निर्णय लिया था, तथा 1999 में उन्हें जुड़वाँ बच्ची मिली थी। उसी समय उन्होने 12निषेचित भ्रूणों को द्रवीकृत नाइट्रोजन में माइनस 196 डिग्री तापमान पर भविष्य के गर्भाधान हेतु संग्रहित कर रखा था। मिडलेन्ड फर्टिलटी सर्विसेज की ओर से हर साल उन्हें एक पत्र भेजा जाता था, कि उनके 12 निषेचित भ्रूण उक्त केन्द्र के पास संग्रहित एवं संरक्षित हैं। 10 साल के लम्बे समय के बाद लीसा एवं उनके पति ने अपने परिवार को बढ़ाने का निर्णय लिया तथा 11 वर्ष पूर्व निषेचित अपनी जुडवाँ बहनों की तरह ही दिखने वाली बच्ची रेलिस का जन्म हुआ। ❁❁❁❁❁

होम्योपैथी: सर्दी जुखाम में कारगर चिकित्सा

यदि आप सर्दी एवं जुखाम जैसे लक्षणों से युक्त वायरल फ्लू से पीड़ित हैं,तो होम्योपैथी आपके लिये एक अच्छा विकल्प हो सकता है। होम्योपैथिक चिकित्सा ऐसी बीमारियों में सुरक्षित एवं प्रभावी है। होम्योपैथी बीमार व्यक्ति में उत्पन्न हो रहे लक्षणों के अनुसार दवाईयों का चुनाव करती है। यदि आप वायरल फ्लू के लक्षणों से पीड़ित हो तो बेहतर है कि आप होम्योपैथिक चिकित्सक से परामर्श लें होम्योपैथिक दवाओं को अमेरिकी फेडरल ड्रग एडमिनिस्ट्रेशन से मान्यता मिली हुयी है। 1918 में जब पश्चिमी देशों में इन्फ्लूएन्जा महामारी के रूप में फैला था, तब होम्योपैथिक दवाओं ने इन्फ्लूएन्जा से होने वाली मौतों को काफी कम कर दिया था। एक रिपोर्ट के मुताबिक 26,795 इन्फ्लूएन्जा के रोगियों में होम्योपैथिक दवाओं ने मृत्युदर में 1.05 की कमी ला दी थी। आयुष दर्पण के ब्लॉग पर आई एक प्रतिक्रिया के अनुसार एक पाठक ने फ्लू एवं स्वाइन फ्लू से बचाव के लिये 'इन्फ्लूएन्जीयम-9 सी' नामक होम्योपैथिक दवा को काफी प्रभावी पाया है। ❁❁❁❁❁

कुछ दवाओं के अच्छे साईड इफैक्ट

यदि कोई भी द्रव्य दवा के रूप में दिया जा रहा हो, तो उसका इफैक्ट मिलना तय है,लेकिन साइड इफैक्ट भी मिलना सहज है। लेकिन कई बार साइड इफैक्ट भी बड़ा फायदेमन्द होता है। इसी प्रकार के दवाओं के कुछ साइड इफैक्ट जो आज उनके मुख्य प्रभाव बन गये का जीता जागता उदाहरण 'वियाग्र' है, जिसे एन्जाइना के लिये प्रयुक्त करते-करते आज नपुंसकता के लिये प्रयोग किया जाने लगा है। अमेरिकी शोधकर्त्ताओं ने रजोनिवृति के प्रभाव को कम करने के लिए महिलाओं में दी जाने वाली इस्ट्रोजनयुक्त दवा को स्तन कैंसर में 40% खतरे को कम करने वाला प्रभाव साइड इफैक्ट के रूप में पाया है। इसी प्रकार 'लेटेनोप्रोस्ट' नामक आईड्राप जिसका प्रयोग ग्लूकोमा में कराया जाता है, इससे रोगियों में गहरे,लम्बे एवं घने भौं पाये गये अब इस साइड इफैक्ट की वजह से इसे गन्जापन (एलोपेसिया) के इलाज के लिये नई दवा के रूप में तलाशा जा रहा है। ❁❁❁❁❁

होम्योपैथिक चिकित्सा के लिये नई खुशखबरी

6 महीने पूर्व ब्रिटिश मेडिकल एसोसिएशन ने होम्योपैथी को अवैज्ञानिक करार दिया था,लेकिन आईआईटी के वैज्ञानिकों ने नैनो टेक्नोलॉजी के सिद्धान्तों पर कार्य करने वाली सिद्ध कर करारा जवाब दिया है। वैज्ञानिकों के अनुसार होम्योपैथिक दवायें गोल्ड,कॉपर एवं आयरन के नैनोपार्टिकिल्स हैं, जिनकी कार्मुकता विलयन से बढ जाती हैं, ये नैनोमीटर में मापी जाती हैं। आई.आई.टी. मुम्बई के वैज्ञानिकों के द्वारा होम्योपैथी जर्नल में प्रकाशित लेख में यह बतलाया है, कि होम्योपैथिक दवाईयों में मौजूद नैनोपार्टिकल्स को दवाओं के उच्च विलयीकृत घोलों में उच्च क्षमता से युक्त इलेक्ट्रोनमाइक्रोस्कोप में देखा गया है। इस रिसर्च के अनुसार होम्योपैथिक दवाओं के उच्च विलयन में भी उसके मूल धात्विक तत्व मौजूद होते हैं। अर्थात विलयन में मौजूद मूल तत्व नैनोपार्टिकल्स के रूप में कार्य करते हैं। ❁❁❁❁❁

सामान्य दर्द निवारक दवायें बना सकती है हृदय रोगी

दर्द निवारक दवाओं पर किये गये एक शोध अध्ययन के अनुसार ये हृदय रोगों की सम्भावना को बढ़ा देते हैं। दर्द निवारक दवाओं में खासकर एनएसएआईडी समूह एवं नई cox 2 Inhibitor जिनका प्रयोग आस्टियोआर्थ्राइटिस या अन्य दर्द एवं सूजन जैसी अवस्था को कम करने में प्रयोग लाया जाता है, के प्रयोग से हृदय रोगों की सम्भावना उत्पन्न हो सकती है।

भारत सरकार बीस मलेशियाई छात्रों को देगी स्कॉलरशिप

भारतीय प्रधानमंत्री के मलेशिया दौरे के दौरान हुए समझौते के अनुसार भारत सरकार बीस छात्रों को भारतीय चिकित्सा पद्धतियों में पढ़ाई करने हेतु स्कॉलरशिप प्रदान करेगी। इस स्कॉलरशिप में रहना-खाना एवं अन्य खर्चे सम्मिलित हैं, केवल छात्र को अच्छी अंग्रेजी आना एवं स्वस्थ होना आवश्यक होगा।

माइग्रेन एवं उच्चरक्तचाप की चिकित्सा है: बायोफीड़बैक

विभिन्न क्लीनिकल तकनीकों को मिलाकर बनायी गयी फीडबैक कुछ बीमारियों की चिकित्सा में बड़ी फायदेमन्द सिद्ध हो रही है। बायो का अर्थ शरीर की क्रियात्मक प्रणाली से है,जबकि फीडबैक का अर्थ शरीर के किसी सूचना पर दिये गये उत्तर से है। यह शरीर को क्रियात्मक रूप से परिवर्तित कर रोगों से लड़ने में सक्षम बनाता है।

कम उम्र के युवा विज्ञापनों से होते हैं प्रभावित

एक अध्ययन से कम उम्र के युवा सिगरेट के विज्ञापनों से प्रभावित हो जाते हैं। इस अध्ययन के अनुसार युवा सिगरेट के विज्ञापन को देख कर अपने मन में रोमांच उत्पन्न होने का एहसास लेते हैं। इस अध्ययन में दस से सत्रह वर्ष की आयु के 2100 बच्चों को शामिल किया गया है।

खतनाक है: शराब की लत एवं मोटापा

शराब की लत एवं मोटापा दोनों ही यदि एक साथ यदि व्यक्ति के अन्दर मौजूद हों तो क्या कहना; वाशिंगटन विश्वविद्यालय स्कूल ऑफ मेडिसिन के शोधकर्ताओं ने इन दोनों के मध्य के सम्बन्धों का स्थापित करने में सफलता पायी है। ऐसे महिला एवं पुरूषों जिनके माता पिता में भी शराब की लत एवं मोटापा मौजूद था,उनमें इनकी संभावना अधिक पाई गई। मोटापा एवं शराब की लत,के कारण मधुमेह उच्चरक्तचाप,हृदयरोग,एवं कैंसर जैसी बीमारियाँ भी उत्पन्न हो सकती हैं। जर्नल आफ साइकेट्री के एक शोध में महिलाएं जो शराब का सेवन करती हैं, अधिकांश रूप से मोटापे से ग्रसित हो सकती हैं।

कुछ प्रचलित प्रतिबंधित दवायें

ड्रग कंट्रोलर जनरल ऑफ इंडिया ने कुछ प्रचलित दवाओं को प्रतिबंधित घोषित किया है। इन दवाओं को केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्रालय की टेक्निकल एडवाइजरी बोर्ड ने भी मानव प्रयोग हेतु असुरक्षित माना है। इन दवाओं में दर्द में प्रयोग की जानेवाली निमुसुलाइड, बच्चों में पेट से सम्बंधित तकलीफों में दी जाने वाली सिसाप्राइड एवं सर्दी-जुखाम में दी जानेवाली फिनायलप्रोपेलेमिन सम्मिलित हैं। इनमें कुछ दवाओं के प्रचलित ब्राण्ड जैसे: विक्स एक्शन 500, डी कोल्ड आदि सम्मिलित हैं। अधिकांश प्रतिबंधित दवाओं का चिकित्सक अपने पर्चों में धडल्ले से प्रयोग करते रहे हैं। लेकिन अभी भी उपभोक्ताओं एवं चिकित्सकों के मध्य जानकारी न होने के कारण,ये दवायें अभी भी बिक्री की जा रही है। ये प्रतिबंधित दवाईयाँ भारत के पचास हजार करोड़ दवा बाजार में से बीस हजार करोड़ की हिस्सेदारी रखती हैं। इन दवाओं के घातक प्रभाव के कारण इन्हें प्रतिबंधित किया गया हैं। ❁❁❁❁❁

मेथी है बड़ी गुणकारी

यदि आपको जुखाम जैसे लक्षणों से जूझना पड़ रहा हो तो मेथी आपके लिये गुणकारी साबित हो सकती है। इसमें वायरस से लड़ने की क्षमता रखने वाले पदार्थ पाये गये हैं। जाड़ों के समय बीस रोगियों में कराये गये एक परीक्षण जिनमें दस रोगियों में वायरलफ्लू के लक्षण पाये गये को आधा चम्मच मेथी के दानों का सेवन कराया गया,तथा इसके अच्छे परिणाम देखे गये। ❁❁❁❁❁

आयुष ग्राम परियोजना की धीमी रफ्तार

उत्तराखण्ड़ के मुख्यमंत्री डा .रमेश पोखरियाल निशंक के ड्रीम प्रोजेक्ट आयुष ग्राम जिसके अन्तर्गत राज्य के 13जिलों में आयुर्वेद, योग, यूनानी, सिद्ध एवं होम्योपैथी को मिलाकर एक हेल्थ केयर सेन्टर बनाया जाना है, इसे अभी नैनीताल जिले के भवाली में ही थोड़ी सफलता मिल पायी है। इस सम्बंध में कोलकाता स्थित इमामी हर्बल कम्पनी के साथ एक एमओयू पर हस्ताक्षर किये गये हैं, लेकिन अन्य जिलों में प्रगति की रफ्तार धीमी है। कहीं वन विभाग से अनुमति मिलनी बाँकी है, तो कहीं पर्यावरण मंत्रालय की स्वीकृति मिलनी शेष है। पिथौरागढ़ एवं चम्पावत जिलों में भूमि का अधिग्रहण एवं अन्य प्रक्रियायें पूर्ण हो चुकी हैं, जबकि अन्य दस जिलों में अभी काफी काम बाकी है।

❁❁❁❁❁

पंचकर्म यूनिटों में विशेषज्ञ चिकित्सकों की नियुक्ति का मामला

उत्तराखण्ड़ सरकार की मंजूरी के बावजूद वित्त विभाग की नामंजूरी से पंचकर्म विशेषज्ञों की नियुक्ति का मामला लटक गया है। उत्तराखण्ड़ के प्रत्येक जिले में पंचकर्म यूनिट स्थापित की गयी है तथा पर्याप्त कर्मचारी एवं विशेषज्ञ चिकित्सकों के अभाव के कारण रोगियों को लाभ नहीं मिल पा रहा है। राज्य सरकार एवं केन्द्र सरकार द्वारा करोडों रूपये स्नातकोत्तर (एमडी) की पढ़ाई पर खर्च किये जाने के बावजूद इन चिकित्सको को विशेषज्ञ का दर्जा प्राप्त नहीं है। ❁❁❁❁❁

कवितायें

मैं सोचता हूँ कभी !
मैं देखता हूँ कभी !!
आंसुओं से भरे वो चेहरे!
दर्द छलकते वो गहरे!!
लोगों की जुबां पे चिकित्सक!
होता है, ईश्वर का रूप!!
पर मुझे पता, नहीं मैं उसका रूप!
मैं तो हूँ एक माध्यम!!
दर्द लेने-देने का साधन!
अगर दर्द लूँ तो भगवान!!
अगर दर्द दूँ तो शैतान!
मैं सोचता हूँ कभी !
मैं देखता हूँ कभी !!
आँसुओं से भरे वो चेहरे!
दर्द छलकते वो गहरे!
अगर होता मैं भगवान!!
तो क्यूँ न हरता सबके दुःख!
न होता कोई कभी दुःखी!!
न मरता कोई कभी!
मैं माँगता हूँ खुदा से !!
दे इतनी शक्ति मुझमें!
आये जो कोई दुःखी!!
वो ले जाये खुशी!

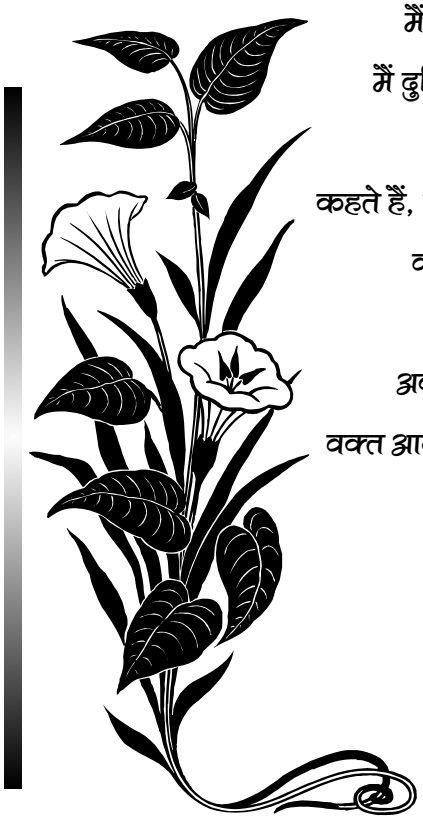

मैं अकेला चलना चाहता था, चल न पाया!
मैं दुनिया बदलना चाहता था, बदल न पाया!!

कहते हैं, कि चिंगारी रोशनी पैदा कर सकती है!
वक्त के थपेड़ों में बुझ गयी वो चिंगारी!!

अब तो राख के अन्दर दबी है, इक आस!
वक्त आने पर जलेगी शमा रोशन हुयी है आस!!

वो सुबह फिर मुझसे कुछ कहती है!
कहते हैं, कि शाम फिर आयेगी !!

अंधेरा ही अंधेरा होगा !
फिर एक नई सुबह आयेगी!!